

卐 श्रीमद्राघवो विजयते 卐

धर्मचक्रवर्ती, महामहोपाध्याय, जीवनपर्यन्त कुलाधिपति, वाचस्पति, महाकवि
श्रीचित्रकूटतुलसीपीठाधीश्वर जगद्गुरु रामानन्दाचार्य स्वामी रामभद्राचार्य जी महाराज
का राष्ट्रीय, आध्यात्मिक, सांस्कृतिक एवं धार्मिक चेतना का संवाहक

श्रीतुलसीपीठसौरभ

(मासिक पत्र)

सीतारामपदाम्बुजभक्तिं भारतभविष्यं जनतैक्यम्।
वितरतु दिशिदिशि शान्तिं श्रीतुलसीपीठसौरभं भव्यम्॥

वर्ष १३

अगस्त २००९ (४, ५ सितम्बर को प्रेषित)

अंक-१२

संस्थापक-संरक्षक

श्रीचित्रकूटतुलसीपीठाधीश्वर जगद्गुरु रामानन्दाचार्य
स्वामी श्रीरामभद्राचार्य जी महाराज

संरक्षक एवं प्रकाशक

डॉ० कु० गीता देवी (पूज्या बुआ जी)
प्रबन्धन्यासी, श्रीतुलसीपीठ सेवान्यास, चित्रकूट

सम्पादक

आचार्य दिवाकर शर्मा
220 के, रामनगर, गाजियाबाद-201001
मो०- 09971527545

सहसम्पादक

डा० सुरेन्द्र शर्मा 'सुशील'
डी-255, गोविन्दपुरम्, गाजियाबाद-201001
दूरभाष : 0120-2767255, मो०-09868932755

प्रबन्ध सम्पादक

श्री ललिता प्रसाद बड़धवाल
सी-295, लोहियानगर, गाजियाबाद-201001
0120-2756891, मो०- 09810949921

सहयोगी मण्डल (ये सभी पद अवैतनिक हैं)

डा० श्रीमती वन्दना श्रीवास्तव, 09971149779
श्री दिनेश कुमार गौतम, 09868977989
श्री सत्येन्द्र शर्मा एडवोकेट, 09810719379
श्री अरविन्द गर्ग सी.ए., 09810131338
श्री सर्वेश कुमार गर्ग, 09810025852
डॉ० देवकराम शर्मा, 09811032029

पूज्यपाद जगद्गुरु जी के सम्पर्क सूत्र :

श्रीतुलसीपीठ, आमोदवन,
पो० नया गाँव श्रीचित्रकूटधाम (सतना) म०प्र० 485331
0-07670-265478, 05198- 224413

वसिष्ठायनम् - जगद्गुरु रामानन्दाचार्य मार्ग
रानी गली नं०-1, भूपतवाला, हरिद्वार (उत्तरांचल)
दूरभाष-01334-260323

श्री गीता ज्ञान मन्दिर
भक्तिनगर सर्कल, राजकोट (गुजरात)
दूरभाष-0281-2364465

पंजीकृत सम्पादकीय कार्यालय एवं पत्र व्यवहार का पता
आचार्य दिवाकर शर्मा,
220 के., रामनगर, गाजियाबाद-201001
मो०- 09971527545

रामानन्दः स्वयं रामः प्रादुर्भूतो महीतले

विषयानुक्रमणिका

क्रम सं.	विषय	लेखक	पृष्ठ संख्या
१.	सम्पादकीय	-	३
२.	वाल्मीकिरामायण सुधा (४९)	पूज्यपाद जगद्गुरु जी	४
३.	श्रीमद्भगवद्गीता (८०)	पूज्यपाद जगद्गुरु जी	८
४.	श्रीनैमिषारण्यतीर्थ का महत्व	-	१०
५.	पूज्यपाद जगद्गुरु जी के आगामी कार्यक्रम	प्रस्तुति-पूज्या बुआ जी	११
६.	श्रीनैमिषारण्य तीर्थ में १००८.....	-	१२
७.	मानसोक्त विप्रनिष्ठा की शास्त्रीयता	मानसमुगेन्द्र डॉ० ब्रजेश दीक्षित	१३
८.	गोसेवा करिये और राष्ट्र को.....	श्रीजगदीश प्रसाद गुप्त	१७
९.	शिखा की वैज्ञानिकता का रहस्य	पूज्यपाद पं० दीनानाथ शास्त्री सारस्वत	२१
१०.	साधु पुरुष के लक्षण	पूज्य स्वामी योगेश्वरानन्द जी सरस्वती	२३
११.	धर्मशास्त्रों में आचरणीय सूक्तियाँ	प्रस्तुति-आचार्य चन्द्रदत्त 'सुवेदी'	२६
१२.	यह दाग मिटाना ही होगा	प्रस्तुति-डॉ० उन्मेष 'राघवीय'	३०
१३.	कलिका दशकम्	पूज्यपाद जगद्गुरु जी	३१
१४.	व्रतोत्सवतिथिनिर्णयपत्रक	-	३२

सुधी पाठकों से विनम्र निवेदन

१. 'श्रीतुलसीपीठसौरभ' का प्रत्येक अंक प्रत्येक दशा और परिस्थिति में प्रत्येक महीने की ४ तथा ५ तारीख को डाक से प्रेषित किया जाता है। पत्रिका में छपे महीने का अंक आगामी महीने में ही आपको प्राप्त होगा।
२. 'श्रीतुलसीपीठ सौरभ' मंगाने हेतु बैंक ड्राफ्ट 'श्रीतुलसीपीठसौरभ' के नाम से ही बनवाएँ तथा प्रेषित लिफाफे के ऊपर हमारा नाम तथा पूरा पता स्पष्ट अक्षरों में लिखें। मनीआर्डर पर हमारा नाम-पता ही लिखें प्रधान सम्पादक अथवा प्रबन्ध सम्पादक कभी न लिखें।
३. पत्रव्यवहार करते समय अथवा ड्राफ्ट-मनीआर्डर भेजते समय अपनी वह ग्राहक संख्या अवश्य लिखें जो पत्रिका के लिफाफे के ऊपर आपके नाम से पहले लिखी है।
४. 'श्रीतुलसीपीठसौरभ' में 'पूज्यपाद जगद्गुरु जी' से अधिप्राय धर्मचक्रवर्ती श्रीचित्रकूटतुलसीपीठाधीश्वर जगद्गुरु रामानन्दाचार्य स्वामी रामभद्राचार्य जी महाराज समझा जाए।
५. 'श्रीतुलसीपीठ सौरभ' में प्रकाशित लेख/कविता/अथवा अन्य सामग्री के लिए लेखक/कवि अथवा प्रेषक महानुभाव ही उत्तरदायी होंगे, सम्पादक मण्डल नहीं।
६. 'श्रीतुलसीपीठसौरभ' प्राप्त न होने पर हमें पत्र लिखें अथवा फोन करें। हम यद्यपि दूसरी बार पुनः भेजेंगे। किन्तु अपने डाकखाने से भलीप्रकार पूछताछ करके ही हमें सूचित करें।
७. डाक की धोर अव्यवस्था के चलते हमें दोषी न समझें। हमें और आपको इसी परिस्थिति में 'पूज्यपाद जगद्गुरु जी' का कृपा प्रसाद शिरोधार्य करना है।
८. सुधी पाठक अपने लेख/कविता आदि स्पष्ट अक्षरों में लिखकर भेजें। यथासमय-यथासम्भव हम प्रकाशित करेंगे। अप्रकाशित लेखों को लौटाने की हमारी व्यवस्था नहीं है।

सदस्यता सहयोग राशि

संरक्षक	११,०००/-
आजीवन	५,१००/-
पन्द्रह वर्षीय	१,०००/-
वार्षिक	१००/-

-सम्पादकमण्डल

श्रीतुलसीपीठ सेवान्यास, चित्रकूट के स्वामित्व में मुद्रक तथा प्रकाशक डॉ० कु० गीतादेवी (प्रबन्धन्यासी) ने श्री राघव प्रिंटर्स, जी-17 तिरुपति प्लाजा, बेगम पुल रोड, बच्चापार्क, मेरठ, फोन (का०) 4002639, मो०-9319974969, से मुद्रित कराकर कार्यालय 220 के., रामनगर, गाजियाबाद से प्रकाशित किया।

सम्पादकीय-

भागवत कथा सुख और शान्ति देती है

(इस बार नैमिषारण्य में अवश्य सुनिए)

भगवान् की भक्तिभागीरथी हजारों वर्षों से प्रवाहित करने वाला श्रीमद्भागवत महापुराण योगीन्द्र मुनीन्द्र अमलात्मा महात्माजन के कण्ठ का हार है। यही ग्रन्थरत्न भगवान् का अक्षरावतार है। वैष्णवों का धन है भक्तों का जीवन है। इस ग्रन्थ के अक्षर अक्षर की भारतीय समाज में पूजा होती है। अध्येताओं द्वारा इसके आख्यानों का अनुसन्धान होता है। हजारों वर्षों से लाखों करोड़ों महानुभाव इस ग्रन्थराज की कथाओं को कहकर जहाँ अपना जीवन धन्य करते आ रहे हैं वहीं अनेक तत्त्वदर्शी मनीषी महानुभाव भी श्रीमद्भागवत कथा सुनाकर लोकोपकार करते आ रहे हैं। शब्दान्तर से कहें तो भागवत कथा भक्तों की व्यथा को नष्ट करके तथा उन्हें निर्मल करके भगवान् की भक्ति भागीरथी में स्नान कराती रहती है। इस महाग्रन्थ में ज्ञानियों को दिव्यज्ञान, विज्ञानियों को गूढार्थचिन्तन, साधकों को साधना के दर्शन होते हैं।

आज आध्यात्मिक जगत में रामायण और भागवत की कथा की बहुलता है। अनेक साधक भागवत कथा कहकर सदाचरण और संस्कारों की शिक्षा के शिविर लगा रहे हैं। ऐसा सकारात्मक करना भी चाहिए। किन्तु ध्यान रखने की बात है कि श्रीमद्भागवत महापुराण सुनने सुनाने वालों के लिए जो निर्देश भगवान् वेदव्यास जी ने दिए हैं उनका अधिक से अधिक पालन करना चाहिए। कथावाचकों को चाहिए कि भगवान् को रिझाने के लिए कथा कहें श्रोताओं की वाह-वाह लूटने के लिए नहीं। मूलकथा से निरन्तर जुड़े रहकर कथा कहें अपने व्यक्ति प्रशंसा के संस्मरण, शेर, शायरी, गीत, कव्वाली आदि से बचें। गंगाजल में गटर को मिलाना उचित नहीं तथा समन्वय नहीं कहा जा सकता। भगवत्प्रेम मन, वाणी और कर्म में यदि प्रवाहित होता है तो कथावक्ता और श्रोता दोनों धन्य हो जाते हैं।

परम सौभाग्य का विषय है कि वर्तमान युग में विश्वविलक्षण आप्तपुरुष-महापुरुष श्रीचित्रकूट तुलसीपीठाधीश्वर जगद्गुरु रामानन्दाचार्य स्वामी रामभद्राचार्य जी महाराज ऐसे भागवतकथाव्यास हैं जिनके जीवन का प्रत्येक श्वास भगवद् विश्वास से पूरित है, जिनको भागवत जी की प्रत्येक पंक्ति का नित्य अनुसन्धान सिद्ध है, जिन्होंने भागवत जी की प्रायोपवेशस्थली श्रीशुकताल तीर्थ में अपने आराध्यदेव भगवान् श्रीराम को ही भागवतकथा का मुख्य यजमान बनाकर दिव्यभावों की भागीरथी प्रवाहित की है उनके श्रीमुख से प्रथमबार श्रीनैमिषारण्य तीर्थ में श्रीमद्भागवत कथा का आयोजन किया गया है। वंशपरम्परा से प्राप्त कथा कहने का अधिकार राष्ट्र और धर्म के आराधन का विचार जिनकी कथाओं का विशिष्ट आकर्षण होता है उन पूज्यपाद जगद्गुरु जी के द्वारा सम्पन्न होने वाली १००८ श्री मद् भागवत कथा के विशाल एवं भव्य आयोजन में भाग लेकर आप सभी अखण्ड पुण्य प्राप्त करें-ऐसी हमारी विनम्र प्रार्थना है। नमो राघवाय। (कृपया मोबाइल पर ही सम्पर्क करें)

आचार्य दिवाकर शर्मा

प्रधान सम्पादक

वाल्मीकिरामायण सुधा (५२)

(गतांक से आगे)

□ धर्मचक्रवर्ती महामहोपाध्याय श्रीचित्रकूटतुलसीपीठाधीश्वर
जगद्गुरु रामानन्दाचार्य स्वामी श्रीरामभद्राचार्य जी महाराज

हे धर्मज्ञ हे अशरणशरण परिकलितराजीवचरण विश्वभयहरण मैथिलीकण्ठाभरण कारणकरण तारणतरण अकारणकरुणावरुणालय विशुद्धचिन्मय सकलगुणगणनिलय सरकार! मैंने अब आपको जान लिया और मैंने धर्म का भारी उल्लंघन किया है परन्तु हे राघव! आपकी धर्मसम्मिता वाणी के द्वारा मैंने सब कुछ समझ लिया है अब कृपा करके मेरा पालन कीजिए।

अब नाथ करि करुना बिलोकहु देहु जो बर माँगऊँ।
जेहि जोनि जन्मौ कर्मवश तहँ राम पद अनुरागऊँ।
यह तनय मम शम विनय बल कल्याणप्रद प्रभु लीजिए।
गहि बाँह सुरनरनाह आपन दास अंगद कीजिए।।

मैं जिस भी योनि में जन्म लूँ वहाँ आपके चरणों में मेरा प्रेम बना रहे।

म चात्मानमहं शोचे न तारां न च बान्धवान्।

यथा पुत्रं गुणज्येष्ठमंगदं कनकांगदम्।।

मुझे स्वयं पर कोई शोक नहीं है। मैं तो धन्य हो गया, तारा के लिए भी मुझे कोई शोक नहीं है। तारा को मैं आपके चरणों में सौंप रहा हूँ। बालि भगवान राम से कह रहा है कि तारा को सँभालियेगा, इन्हें सुग्रीव की रक्षा में कर दीजिए, सुग्रीव को ये उचित सलाह देंगी। आज समाज में बहुत भ्रान्तियाँ फैली हुई हैं उनका निराकरण बहुत आवश्यक है। प्रथम तो बालि को श्रीराम ने छिपकर नहीं मारा था दूसरे, सुग्रीव ने तारा को पत्नी बनाकर नहीं रखा था मेरा एक ग्रन्थ अभी पुनः मुद्रित होने को है सुग्रीव की कुचाल और विभीषण की करतूत उसमें मैंने सभी

भ्रान्तियों का निवारण एवं इस प्रकार के सभी प्रश्नों का समाधान किया है। सुग्रीव ने तारा को माँ के समान रखा था। रामचरित्र पर मूर्खों का कितना लाञ्छन है? और विभीषण ने भी मन्दोदरी को माँ के समान ही रखा था। पृथ्वी भी राजा की पत्नी होती है तो रावण के द्वारा भुक्त पृथ्वी का विभीषण भोग कर रहे हैं। सोचिये तारा जैसी महिला जो राघवेन्द्र जी के चरणों में आ गई वह क्या पतित होगी? तारा जी ने राघव जी को देखा और कहा-

त्वमप्रमेयश्च दुरासदश्च
जितेन्द्रियश्चोत्तम धर्मकश्च।
अक्षीणकीर्तिश्च विचक्षणश्च
क्षितिक्षमावान् क्षतजोपमाक्षः।।

हे रघुनन्दन! आप अप्रमेय देशकाल और वस्तु की सीमा से रहित हैं आपको पाना बहुत कठिन है। आप जितेन्द्रिय और उत्तम धर्म का पालन करने वाले हैं। आपकी कीर्ति कभी नष्ट नहीं होती आप दूरदर्शी एवं पृथ्वी के समान क्षमाशील हैं आप कमलनेत्र हैं। जो तारा रघुनाथ जी के प्रति इतना प्रेम करती है वह क्या कभी व्यभिचारिणी होगी? तारा कौन है? तारा में सीता जी का 'ता' और राम जी का 'रा' है। तारा को दोनों की कृपा प्राप्त है। तारा पंचकन्याओं में है और मन्दोदरी भी। एक बार हम भगवान का दर्शन करने को तरसते हैं-

तारा बिकल देखि रघुराया
दीन्ह ज्ञान हरि लीनी माया।

उपजा ज्ञान चरन तब लागी
लीन्हेसि परम भगति बर माँगी।

जब परमात्मा जिसे ज्ञान दे रहे हैं, परमात्मा जिसकी माया का हरण कर रहे हो तब क्या वह अज्ञानी के द्वारा मोहित होगी? सीता जी ने कहा तो है-

अज्ञानेनावृतं ज्ञानं तेन मुह्यन्ति जन्तवः।

लक्ष्मण जी के चरणों में आने में तारा को कोई लज्जा नहीं लगी। क्योंकि लक्ष्मण जी परम वैष्णव हैं। जो लक्ष्मण जी शूर्पणखा के नाक कान काट सकते हैं, यदि तारा व्यभिचारिणी होती तो तारा को देखकर क्या लक्ष्मण को क्रोध न आता। इसी कारण बालि ने भगवान श्रीराम से कहा कि सुग्रीव की सहायता में इन्हें रख लीजिए तारा जो कहेंगी उसे सुग्रीव मानेंगे तो इनका कल्याण होगा। यही हुआ अंगद के विषय में क्या करूँ? बालि ने प्रार्थना की-

यह तनय मम शम विनय बल
कल्याणप्रद प्रभु लीजिए।
गहि बाँह सुरनरनाह
आपन दास अंगद कीजिए।।

बालि का संस्कार करके तारा ने विलाप किया। भगवान ने तारा को समझाया और कहा आप चिन्ता न करें भगवान की यही इच्छा थी। तारा को ज्ञान हुआ तब श्रीराम ने कहा आप सुग्रीव की रक्षा कीजिए। आपको सीता जी के भी दर्शन होंगे आप पति के साथ जल्लिए मत। हनुमान जी ने कहा-

ततः काञ्चनशैलाभभस्तरुणार्क निभाननः।
अब्रवीत् प्राञ्जलिर्वाक्यं हनूमान मारुतात्मजः।।

सरकार! आप पधारें और सुग्रीव जी का राज्याभिषेक करायें। आप भी इस रमणीय पर्वतगुफा

किष्किन्धा में पधारने की कृपा करें और सुग्रीव जी को राज्य का स्वामी बनाकर वानरों का हर्ष बढ़ायें। हनुमान जी के ऐसा कहने पर शत्रुओं का संहार करने वाले और वाणी में कुशल श्री रघुनाथ जी ने हनुमान जी से कहा-

चतुर्दश समाः सौम्य ग्रामं वा यदि वा पुरम्।
न प्रवेक्ष्यामि हनुमन् पितुर्निर्देशपालकः।।

हे हनुमन्! सौम्य! मैं पिताश्री की आज्ञा का पालन कर रहा हूँ अतः चौदह वर्षों के पूर्ण होने तक किसी ग्राम या नगर में प्रवेश नहीं करूँगा। तुम्हीं वानरों के साथ मिलकर सुग्रीव को राज्याभिषेक कराओ साथ में लक्ष्मण जी को हनुमान जी के साथ भेज दिया। सुग्रीव को राजा बनाया और अंगद जी को युवराज बनाया। शरद् ऋतु आने पर श्रीराम ने देखा कि आकाश निर्मल है। न कहीं बिजली की गड़गड़ाहट है और न मेघों की घटा है। सब ओर सारसों की बोली सुनाई देती है। यह देखकर प्रभु श्रीराम-

आसीनः पर्वतस्याग्रे हेमधातुविभूषिते।
शारदं गगनं दृष्ट्वा जगाम मनसा प्रियाम्।।

आनन्दकन्द भगवान श्रीराम श्रीलक्ष्मण के साथ पर्वत पर विराजमान हो रहे हैं। शरत्कालीन स्वच्छ आकाश को देखकर प्रिया सीता जी के प्रति उनका मनरूपी मधुप चला गया। परिपूर्णतम परात्पर परमात्मा पुराणपुरुषोत्तम मैथिलीमनोरम वेदवेदान्तवेद्य सगुणसाकार शीर्षकुसुमसुकुमार कौसल्याकुमार देहप्रभाविजितकोटिकोटिमार परमोदार परमपावन कृपाकूपार हतधरणिभार श्रीमद्राघवेन्द्रसरकार की कृपा हमारे ऊपर आप सब पर बरस रही है। मुझ पर तो विशेष बरस रही है। मैं तो यही कह रहा हूँ जैसा कि काकभुशुण्डि जी ने गरुड़ जी से कहा था-

आजु धन्य मैं धन्य अति जद्यपि सब विधि हीन।
निज जन जानि राम मोहि सन्त समागम दीन।।

आज सन्त समागम है सन्तों के बीच में आनन्द हो रहा है। मैं अपने पूरे प्राणों को लगाकर इस कथा को प्रस्तुत कर रहा हूँ। विश्राम नाम का कुछ भी नहीं हो पाता। बहुत से लोग हमसे दुःखी भी हो जाते हैं कि जगद्गुरु जी मिलते नहीं हैं। बहुत से सन्त भी अप्रसन्न हो जाते हैं। छः छः घन्टे की कथा और व्यवस्थित रूप में कथा कहना मुझ जैसे व्यक्ति के लिए थोड़ा कठिन तो है ही। पर आप निभवा रहे हैं और हम निभा रहे हैं। पहले सोचा था कि एक समय कथा कहेंगे पर महाराज जी ने कहा था कि कृपया दोनों समय कहें अब अच्छा लग रहा है। प्रायशः अब मेरी कथा धामों के अतिरिक्त दो बार नहीं हुआ करती। एक तो पढ़ने पढ़ाने का और विश्वविद्यालय का कार्य बहुत रहता है। यह तो मेरा अपना घर है। एक बार मुझे फिर श्रीरामचरितमानस सुनाने का मन है पर वह अभी जल्दी नहीं होगी।

श्रीरामचरितमानस अब तब सुनाऊँगा जब दो कार्य पूर्ण हो जायेंगे। एक तो तब जब मैं श्रीरामचरितमानस की नौ खण्डों में व्याख्या पूरी कर लूँगा और दूसरा कार्य उतने ही दिनों में जब श्रीराम जन्म भूमि का मन्दिर बनकर पूर्णतया सम्पन्न हो जायगा। तब निश्चित रूप से श्रीरामकथा आपको जल्दी करनी पड़ेगी। हमारे एक सन्त मित्र हैं वे कहते हैं कि आपकी कथा तो होती ही रहती है। मैं यहाँ कथा कहने दौड़कर आता हूँ। हमारा कार्य द्रुतविलम्बित होना चाहिए। अर्थात् संसार का कार्य तो द्रुत (शीघ्र) निबटाओ और भगवान के कार्य (कथा) में धीरे धीरे झूमझूमकर (विलम्बित) आनन्द लो। हम भी

सांसारिक कार्य जल्दी निबटाते हैं और भगवान के कार्य आनन्द से करते हैं। आप लोग आशीर्वाद दें कि दोनों कार्य पूर्ण हो जायें फिर झूमकर श्रीरामचरितमानस हो जाय। आज मुख्य यजमान हमसे शिकायत कर रहे थे। कह रहे थे महाराज! आप गजब करते हैं। मैंने पूछा कि मैंने क्या गजब कर दिया तो वे बोले कि मुख्य यजमान तो आपने हमको बना रखा है। पर आप सुनाते सन्तों को हैं। अभी जब हम मन्दिर की ओर जा रहे थे तो एक सन्त ने हमसे कहा कि— “विवर्ततेऽर्थभावेन प्रक्रिया जगतो यतः” इस पर आपसे सुनने की इच्छा है। तब मैंने जल्दी में कहा कि या तो आप मेरी कक्षा में आ जाओ तब सुनायेंगे या सायंकाल सुनायेंगे क्योंकि यह ‘भूषण’ का प्रसंग है। पर इसी प्रसंग में सुनाते हैं कि भगवान राम सुग्रीव को राज्याभिषिक्त करके अंगद को युवराज बनाकर चातुर्मास्य बिता चुके हैं। सुग्रीव आ नहीं रहे हैं। यही तो भगवान की लीला है। सन्त जी का प्रश्न यह कि आप तो परिणामवाद का समर्थन करते हैं यहाँ विवर्तवाद कहा गया—

श्रीलक्ष्मीरमणं नौमि गौरीरमणरूपिणम्।

स्फोटरूपं च तत्सर्वं जगदेतद् विवर्तते।।

एक और भी कहा गया है—

अनादिनिधनं ब्रह्म शब्दतत्त्वं यदक्षरम्।

विवर्ततेऽर्थभावेन प्रक्रिया जगतो यतः।।

वाक्यपदीयम् का पहला श्लोक है। इस विषय में वहाँ कोई गड़बड़ नहीं सोचना चाहिए। क्योंकि वैयाकरण भी विवर्तवाद नहीं मानता। विवर्तते माने विशेषण वर्तते। जिस परमात्मा से अर्थभाव द्वारा पदार्थ के रूप में जगत की प्रक्रिया विशिष्ट रूप से प्रवृत्त होती है। उसमें वैशिष्ट्य होता है। हमारे पक्ष का तो यह

समर्थन नहीं है। एक ही चिदचिद्विशिष्ट ब्रह्म कारणरूप में तो परम व्योम में विराजमान हो जाता है पर कार्यरूप में यहाँ पर परिणत हो जाता है। क्योंकि ब्रह्म दो रूपों में प्रतीत होता है।

उसको कारणब्रह्म कहिए अथवा सूक्ष्म ब्रह्म और स्थूल ब्रह्म कह लीजिए जो भी आप कहना चाहें। पर अर्थभाव से पदार्थ के रूप में परमात्मा प्रकट होते हैं, परिणत होते हैं- 'तत् सृष्ट्वा तदेवानुप्राविशत्' अर्थात् जगत की रचना करके भगवान् जगत में ही प्रविष्ट हो गये, अन्तर्यामी रूप में भगवान् जगत में प्रविष्ट हो गये। इसलिए भगवान् जगत में भी हैं और जगत के बाहर भी हैं। जैसे आपने रसगुल्ला देखा है रसगुल्ले में बाहर भी रस होता है और भीतर भी रस होता है उसी प्रकार ब्रह्म जगत में भी है और जगत के बाहर भी है। भगवान् जीव को छोड़कर रह ही नहीं सकते उनका जीव के साथ अविनाभाव सम्बन्ध है-

इदं हि विश्वं भगवानिवेतरो
यतो जगत्स्थाननिरोधि संभवाः।
तद्धि स्वयं वेद भवांस्तथापि वै
प्रादेशमात्रं भवतो निदर्शितम् ॥

भागवत १/५/२०

इसी प्रकार उपनिषद् में कहा भी गया है- यतः खल्विमानि भूतानि जायन्ते येन जातानि जीवन्ति यतः प्रयन्त्यभिविशन्ति तद् विजिज्ञासस्व। इसीलिए विवर्त तो किसी भी मूल्य पर नहीं है। जगत का विवर्तवाद किसी भी मूल्य पर सम्भव नहीं है। यदि कोई विवर्तवाद सिद्ध करना चाहता है तो उससे प्रश्न होता है कि 'परिणामात्' को कहाँ ले जाओगे। अतः यहाँ श्री शंकराचार्य ने सूत्रकार के साथ अत्याचार किया है। इसलिए मधुसूदन सरस्वती स्वयं यह बात स्वीकार करते हुए कहते हैं-

नस्तौमि तं व्यासमशेषमर्थं
यो ब्रह्मसूत्रैरपि नो बबन्ध।
विनापि तै संकलिताखिलार्थं
तं शंकरं नौमि सुरेश्वरं च॥

उनका कहना है कि मैं व्यास जी की वन्दना तो नहीं करूँगा क्योंकि वे ब्रह्मसूत्रों में पूरा वेदान्त न कह सके। क्यों नहीं कह सके? इनकी बात नहीं कही यही उन्होंने गड़बड़ कर दिया। उन्होंने अद्वैतवाद नहीं कहा होगा यही गलती हो गई। फिर किसका वन्दन करोगे? ब्रह्मसूत्रों के बिना जिन्होंने सम्पूर्ण वेदान्त कह डाला। अर्थात् शंकराचार्य परम्परा के लोग भी स्वीकारते हैं कि जो कुछ वेदान्त में शंकराचार्य ने कहा वह सूत्रकार से सहमत नहीं था या सूत्रकार सम्मत नहीं था। ब्रह्मसूत्र पर भाष्य बहुत लोगों ने लिखा और इस शरीर ने (मैंने) भी लिखा। आनन्द कर दिया आपका आशीर्वाद था। ब्रह्मसूत्र का जब चतुर्थ अध्याय आप देखेंगे। तो पायेंगे कि किसी भी प्रकार श्री शंकराचार्य का अद्वैतवाद सिद्ध ही नहीं हो सकेगा। ये तो कहते हैं कि जीव की कोई सत्ता नहीं है औपाधिकी सत्ता है। जीव ब्रह्म ही है जबकि वास्तविकता में 'भोगमात्र साम्यलिङ्गात्' जीव ब्रह्म की केवल भोगमात्र में समानता कर सकता है। सर्वत्र तो समानता का प्रश्न ही नहीं उठता। 'सोऽश्नुते सर्वान् कामान् सह ब्रह्मणा विपश्चितेति' विपश्चिता ब्रह्मणा सह सर्वान् कामान् अश्नुते अर्थात् जीव भगवान् के समान भोग कर सकता है। भगवान् जो खाते हैं जीव को भी खिला देते हैं पर भगवान् का श्रीवत्सलाञ्छन जीव को नहीं मिल सकता। भगवान् का शार्ङ्ग जीव को नहीं मिल सकता। भगवान् की सीता जीव को नहीं मिल सकती।

क्रमशः.....

श्रीमद्भगवद्गीता (८३)

(गतांक से आगे)

(विशिष्टाद्वैतपरक श्रीराघवकृपाभाष्य)

भाष्यकार-धर्मचक्रवर्ती महामहोपाध्याय श्रीचित्रकूटतुलसीपीठाधीश्वर
जगद्गुरु रामानन्दाचार्य स्वामी श्रीरामभद्राचार्य जी महाराज

इस प्रकार अजन्मा अविनाशी सबके ईश्वर भगवान अपनी आह्लादिनी शक्ति के साथ जीवों पर कृपा के परवश होकर अपने स्वरूप को न छोड़ते हुए कौसल्या आदि माताओं को निमित्त बनाकर प्रकट होते हैं। श्री॥

संगति- अब अर्जुन फिर प्रश्न करते हैं कि आप कब अवतार लेते हैं? इस पर भगवान कहते हैं।

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।

अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्॥

४/७

रा०कृ०भा० सामान्यार्थ- हे भरतवंश में उत्पन्न अर्जुन! जब जब धर्म की हानि होती है और अधर्म का अभ्युत्थान होता है तब तब मैं स्वयं को सृजता हूँ अर्थात् सगुण साकार रूप में प्रकट करता हूँ।

व्याख्या- अब यहाँ प्रश्न यह है कि ग्लानि शब्द हर्षक क्षेमार्थक 'ग्लै' धातु से निष्पन्न होता है और हर्ष होता है मूर्तिमान में। धर्ममूर्तिमान है नहीं, फिर भगवान ने 'धर्मस्यग्लानि' कैसे कहा?

उत्तर- यहाँ 'हर्ष' शब्द का 'मोष' करके 'क्षम' शब्द को हानि अर्थ मानने से संगति बन जाती है इसी प्रकार प्राचीन भाष्यटीकाकारों ने व्याख्या भी की है। गोस्वामी तुलसीदास जी भी इसका समर्थन करते हैं-

जब जब होहि धरम कै हानी।

बाढ़हि असुर महा अभिमानी॥

तब तब प्रभु धरि बिबुध सरीरा।

हरहि कृपानिधि सज्जन पीरा॥

मानस १/१२१/६-८

अथवा यहाँ सम्बन्ध में षष्ठी है अर्थात् जब जब धार्मिक को धर्म के सम्बन्ध में ग्लानि होती है तब

तब भगवान का अवतार होता है। अथवा धर्म शब्द 'मत्वर्थीय अच्' प्रत्यय से बना है। अर्थात् धर्मः अस्ति अस्मिन् इति धर्मः। तस्य धर्मस्य। अर्थात् धर्मवतः जब जब धर्मवान् को ग्लानि होती है तब तब भगवान का अवतार होता है। इस व्युत्पत्ति का भी दशरथ जी की कथा के माध्यम से तुलसीदास जी महाराज समर्थन करते हैं। जैसे मानस में उन्होंने दशरथ जी को पहले धरमधुरन्धर कहा-

धरम धुरन्धर गुननिधि ग्यानी।

हृदय भगति मति सारंगपानी॥

(मानस १/१८७/८)

पुनः अगले ही दोहे में धर्मधुरन्धर महाराज की ग्लानि का भी वर्णन करते हैं। जैसे-

एक बार भूपति मन माहीं।

भई ग्लानि मोरे सुत नाहीं॥

मानस १/१८९/१

अथवा पुराणों के अनुसार धर्म देवता हैं और मूर्तिमान भी। इसीलिए श्रद्धा, मैत्री, दया, शान्ति, पुष्टि, तुष्टि, क्रिया, उन्नति, बुद्धि ही तितीक्षा, क्षान्ति तथा मूर्ति ये तेरह धर्म की पत्नियाँ कही गयी हैं। एतएव भागवत २/७/६ में धर्म की पत्नी मूर्ति से नरनारायण का अवतार कहा गया है। यथा-

धर्मस्य दक्षदुहितर्यजनिष्ठ मूर्त्या
नारायणो नर इति स्वतपः प्रभाव।
दृष्ट्वाऽऽत्मनो भगवतो नियमावलोपं
देव्यस्त्वनङ्गपृतना घटितुं न शेकुः॥

भा० २/७/६

इस प्रकार जब धर्म देवता को ग्लानि अर्थात् उनके हर्ष का क्षय हो जाता है तब भगवान का अवतार होता है। मेरी इस व्याख्या में भी गोस्वामी जी का

समर्थन है।

अतिसय देख धरम की ग्लानी।

परम सभित धरा अकुलानी।।

मानस १/१८४/४

अथवा यहाँ धर्म शब्द भगवान का वाचक है। 'धर्मो धर्म विदां श्रेष्ठः' विष्णु सहस्रनाम महाभारत २/६७/४६ में भगवान कृष्ण के लिए ही धर्म शब्द का प्रयोग हुआ है। 'ततस्तु धर्मोऽन्तरितो महात्माः' इस पक्ष में तृतीय चरण में दृष्ट्वा शब्द का अध्याहार होगा। अर्थात् जब जब अधर्म का अभ्युत्थान देखकर मुझ धर्मरूप परमात्मा को ग्लानि होती है तब मैं अपने को धारण करता हूँ। यहाँ आत्मा शरीर का वाचक है 'आत्माशरीरः' इसका यह कोष भी प्रमाण है। इस पक्ष में अर्थ होगा, हे भरतवंशी अर्जुन! जब जब अधर्म का अपराभव देखकर धर्मरूप मुझ परमात्मा को ग्लानि होती है तब मैं 'आत्मानं' अर्थात् निरवधिनिरतिशय कल्याणगुणगणनिलय, विशुद्ध सच्चिदानन्द रसधन दिव्य शरीर की रचना करता हूँ। सृजामि का तात्पर्य है कि मेरा शरीर ब्रह्मा नहीं बनाते और न वे बना सकते हैं। इसे मैं अपनी इच्छा से बनाता हूँ। इसीलिए मानस १/२९२ में गोस्वामी जी कहते हैं-

निज इच्छा निर्मित तनु माया गुणगोपार।।श्री।।

संगति- इसके अनन्तर आप क्या करते हैं? इस पर स्वजन परित्राण परायण नारायण कहते हैं-

परित्राणाय साधुनां विनाशाय च दुष्कृताम्।

धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे।।४/८

रा०कृ०भा० सामान्यार्थ- सन्मार्गगामी साधुओं की रक्षा करने के लिए तथा दुष्टों का विनाश करने के लिए तथा वैदिक धर्म की विधिवत स्थापना करने के लिए मैं प्रत्येक युग में प्रकट होता हूँ।

व्याख्या- परित्राण का अर्थ है चारों ओर से रक्षण। अर्थात् मैं साधुओं की चारों ओर से चारों भुजाओं से रक्षा करता हूँ। यहाँ धर्म शब्द सनातन धर्म का वाचक है। यहाँ यह ध्यान देना चाहिए कि भगवान स्वयं सच्चिदानन्द घन हैं। वे अपने सद्रूप

से साधुओं का परित्राण करते हैं, अपने चिद्रूप से दुष्टों का विनाश करते हैं और अपने आनन्दरूप से धर्म की संस्थापना करते हैं। 'युगे-युगे' का तात्पर्य है कि भगवान प्रत्येक युग में अवतार लेते हैं। कभी अंशावतार तो कभी पूर्णावतार। अंशावतार के भी तीन भेद होते हैं- प्रवेश, आवेश और स्फूर्ति। अथवा भगवान कहते हैं कि मेरा पूर्णावतार त्रेता और द्वापर इन दो युगों में श्रीराम और श्रीकृष्ण के रूप में होता है। इसीलिए युगे युगे यह द्विरुक्ति की गयी। इन्हीं दोनों अवतारों में पूर्वोक्त तीनों हेतु संघटित हो जाते हैं। जैसे श्रीरामावतार में बाललीला में साधु परित्राण वनलीला में दुष्टों का विनाश और राज्यलीला में धर्म की स्थापना। इसी प्रकार श्रीकृष्णावतार में ब्रजलीला में साधुओं का परित्राण, मथुरालीला में दुष्टों का विनाश और द्वारिका लीला में धर्म की स्थापना। अथवा भगवान की प्रत्येक लीला में ये तीनों हेतु दिखाई पड़ते हैं। जैसे भगवान श्रीराम की बाललीला में विश्वामित्र यज्ञ रक्षा से साधु परित्राण ताड़का के वध से दुष्टों का विनाश तथा अहिल्योद्धार तथा सीता स्वयंवर से धर्म की स्थापना। इसी प्रकार श्रीकृष्णावतार में भी ब्रजलीला में गोवर्धन धारण तथा दावाग्निपान आदि से साधु परित्राण और पूतना आदि वध से दुष्टों का विनाश और रासलीला से धर्म की स्थापना। इसीप्रकार दोनों अवतारों में भगवान की प्रत्येक लीला में सुविज्ञ पाठक इन लीलाओं को देख सकते हैं। अतः युगे युगे शब्द का अभिप्राय है कि मैं त्रेता में दशरथ कौसल्या युगल के यहाँ तथा द्वापर में श्री वसुदेव-देवकी युगल के यहाँ प्रकट होता हूँ। यहाँ युग शब्द युगल के अर्थ में है इसलिए महाकवि कालिदास रघुवंश महाकाव्य में युगल शब्द के अर्थ में ही युग शब्द का प्रयोग करते हैं। वन्द्यं युगं चरणयोजनकात्मजायाः। अथवा यहाँ युगे अयुगे यह अकार का प्रश्लेष है। भगवान कहते हैं कि मैं कभी तो माता-पिता युगल को निमित्त बनाता हूँ और कभी अयुग अर्थात् कभी किसी को निमित्त न बनाकर जन्म ले लेता हूँ। ॥श्री॥

क्रमशः.....

(गतांक से आगे)

रासपञ्चाध्यायी विमर्श (२)

□ धर्मचक्रवर्ती महामहोपाध्याय श्रीचित्रकूटतुलसीपीठाधीश्वर
जगद्गुरु रामानन्दाचार्य स्वामी श्रीरामभद्राचार्य जी महाराज

अतुलित महिमा वेद की तुलसी कीन्ह विचार।

जो निंदित निंदित भए विदित बुद्ध अवतार।।

अतएव उन्हीं वेद को समझाने के लिए प्रकट हुये हैं साक्षात् वेद कल्पवृक्ष के फलस्वरूप में श्रीमद् वेदव्यास एवं शुकाचार्य जी को माध्यम बनाकर श्रीमद् भागवत भगवान्। इसलिए भागवत जी के प्रथम स्कन्ध के प्रथम अध्याय के तृतीय श्लोक में आशीर्वादात्मक मंगलाचरण करते हुये वेदव्यास जी भगवान् ने हम सनातन धर्मावलम्बीजनों को आज्ञा दी कि, अरे भावुक रसिको! अपना सौभाग्य तो देखो एक सुन्दर आम का फल तुम सबके सामने आकर उपस्थित हो गया है। वह किसका फल है? कल्पवृक्ष का। कौन सा कल्पवृक्ष? वेदरूप कल्पवृक्ष। उसमें बहुत मधुर स्वाद है। उसका स्वाद तो अमृत को भी फीका कर देता है क्योंकि वह शुकाचार्य रूप तोते के मुखारविन्द के निष्यन्दभूत परमानन्द श्रीकृष्ण प्रेमरस से सम्पूर्ण है। इसको पियो, क्योंकि पृथ्वी पर गिर करके भी यह फल विकृत नहीं हुआ, फूटा नहीं, इसमें पृथ्वी की धूल नहीं लगी। यह फल भी है और रस भी। फल इसलिए कि इसका एक आकार है और रस इसलिए है कि इसमें अन्य फलों की भाँति गुठली नहीं हैं। अन्य फलों की भाँति इसमें छिलका नहीं है। इसीलिए पीते जाओ पीते जाओ, तब तक पियो जब तक भगवान्

श्रीराधाकृष्ण के चरणों में विलीन न हो जाओ।

बारम्बार पियो तुम्हें कोई मना नहीं करेगा। यहाँ 'पिबत' का प्रयोग कर रहे हैं और 'पिबत' पाणिनीय व्याकरण के अनुसार लोट् लकार के मध्यम पुरुष के बहुवचन का रूप है। "यूयं पिबत" तुम सब पीते जाओ पीते जाओ, कितनी बार? 'मुहुः' बारम्बार पियो कोई आपत्ति नहीं है। 'आलयं' अपनी लय के पर्यन्त पियो, लय को व्याप्त करके पियो, लय की मर्यादा के साथ पियो, पीते जाओ, कोई नहीं रोकेगा। हम सबकी भाग्य की प्रशंसा करते हुये वेदव्यास जी 'अहो' शब्द का प्रयोग कर रहे हैं। अहो! यह सौभाग्य और कहीं नहीं है। यह स्वर्ग में भी सौभाग्य नहीं है। स्वर्गे सत्ये च कैलासे वैकुण्ठे नास्त्ययं रसः। अतः पिबन्तु सद्भाग्या मा मा मुंचत कर्हिचित्।।

भा०मा०६/८३ ३०/९/०८

यह सत्यलोक में सौभाग्य नहीं है। वैकुण्ठ में यह सौभाग्य नहीं प्राप्त है। यह सौभाग्य तो इस भूतल पर, इसमें भी भगवती भारत माता की गोद में प्राप्त है। इससे इस सौभाग्य को मत जाने दो। उन्होंने द्रुत विलम्बित छन्द में आशीर्वाद देते हुये कहा,

“निगमकल्पतरोर्गलितं फलं
शु वान्मु खादम् तां द्रवासां शु ताम्
। शु कमुखादमृतं द्रवसंयुतम् पिबत भागवतं
रसमालयं मुहुरहो रसिका भूविभावुका।”

यह भागवत है आम का फल पर आम ही तो राम है। 'रामं' शब्द के ही अक्षर आम में आते हैं।

‘राम’ शब्द अपने में महत्वपूर्ण है। सामान्य रूप से राम सम्पूर्ण भारतीय संस्कृति की व्याख्या कर देता है। ‘र’ का अर्थ है ऋग्वेद, ‘आ’ का अर्थ है आहुतिप्रधान यजुर्वेद, ‘म’ का अर्थ है मधुरता प्रधान सामदेव और पुनः अ का अर्थ है अथर्ववेद। ‘राम’ सम्पूर्ण वेदमय हैं। ‘राम’ ब्रह्मा, विष्णु और शिवमय हैं और भारत के तो दो ही इतिहास हैं रामायण और महाभारत। ‘रा’ का अर्थ है रामायण और ‘म’ का अर्थ है महाभारत। भारत की संस्कृति गंगा-यमुनी संस्कृति है। एक संस्कृति के नायक हैं भगवान् श्रीराम और दूसरी संस्कृति के नायक हैं भगवान् श्रीकृष्ण। अतः ‘रा’ का अर्थ है राघव और ‘मा’ का अर्थ है माधव। इसलिए हम श्रीरामकृष्णात्मक सनातन धर्म को प्रणाम करते हैं। भारतीय सिद्धान्त में श्रीराम और श्रीकृष्ण दोनों में ही कोई भेद नहीं स्वीकारा गया है। जो श्रीराम और श्रीकृष्ण में भेद स्वीकारते हैं वे निश्चित ही भारतीय संस्कृति का अपमान कर रहे हैं और भारतीय संस्कृति की हानि भी कर रहे हैं। इससे यहाँ यह बात कहनी मुझे बहुत आवश्यक प्रतीत होती है कि हम किसी भी मूल्य पर श्रीराम से श्रीकृष्ण को भिन्न नहीं मानते। इन दोनों में किसी को बड़ा-छोटा नहीं मानते। गोस्वामी जी ने कह दिया, “को बड़ छोट कहत अपराधु।” भगवान् श्रीराम ही श्रीकृष्ण हैं, भगवती श्रीसीता ही श्रीराधा हैं। एक ओर उनकी हाथ में धनुष-बाण है तो दूसरी ओर मुरली और सुदर्शन चक्र। एक ओर भगवती श्रीसीता जी विराज रही हैं, तो दूसरी ओर भगवती श्रीराधा। हाँ, इस अवतार में बहुत-सी स्त्रियाँ भगवान्

श्रीकृष्ण के साथ प्रेम करती हुयी दिखती हैं। भगवान् श्रीराम एक नारीव्रत मर्यादा के पालक हैं। वहाँ तो उनके साथ केवल भगवती श्रीसीता जी ही दिखेंगी, परन्तु भगवान् श्रीकृष्ण के साथ ऐसा नहीं है, वे बहुपत्नीव्रत सिद्धान्त के पोषक हैं। अतएव, वहाँ पर यह आग्रह नहीं है, वस्तुतस्तु भगवती श्रीसीता जी की ही कायव्यूहभूत जो परछाइयाँ हैं वे ही यहाँ श्रीगोपियों के रूप में परिलक्षित होती है, क्योंकि भगवती श्रीसीता जी ही कृष्णावतार की राधा जी हैं। मिथिला में श्रीविवाह मण्डप में श्रीसीताराम जी की जो परछाइयाँ मणियों के खम्भों में विराज रही हैं वे ही श्रीकृष्णावतार में रासलीला में बहुत सी गोपियों और बहुत से श्रीकृष्णों के रूप में परिलक्षित होती हैं अर्थात् मूलरूप में श्रीकृष्ण एक हैं जो राधा जी के साथ हैं। परन्तु उन्होंने ही अपने प्रतिबिम्बों को गोपियों के रूप में प्रस्तुत कर दिया। और यह बात स्वयं भागवतकार कहते हैं। श्रीरासपंचाध्यायी के विश्राम में भगवान् शुकाचार्य जी ने महाराज परीक्षित जी को आज्ञा देते हुये कहा-

“एवं परिष्वङ्गकराभिमर्शस्निग्धेक्षणोद्दामविलासहासैः।
रेमे रमेशो व्रजसुन्दरीभिर्यथार्भकः स्वप्रतिबिम्बविभ्रमः॥”

१०/३३/१७

अर्थात् हे महाराज परीक्षित! जिस प्रकार से छोटा-सा बालक अपने प्रतिबिम्बों अर्थात् अपनी परछाइयों को देखकर उनसे हँसता है, खेलता है, उन्हें पकड़ता है, उन्हें चूमता है, उसी प्रकार रमेश, रमा अर्थात् कृष्णरस की शक्ति भगवती श्रीराधा के ईश्वर

श्रीकृष्णचन्द्र अपने आलिंगनों, विलासों, हासों, स्नेहभरी चितवनों और स्वतन्त्र भिन्न-भिन्न भावों के साथ ब्रजसुन्दरियों के साथ खेल रहे हैं। हमारी समस्या यह है कि हम भारतीय कभी-कभी वैदिक वाङ्मय के साथ न्याय नहीं कर पाते। कुछ सोच नहीं पाते। और न ही कुछ सोचने का मन में अभिलाष रखते हैं। हम अपने ही परिवेश के आधार पर भगवान् का आकलन कर लेते हैं यही हमारी भूल हो जाती है, जबकि ऐसा नहीं करना चाहिए। भगवान् मनुष्य के परिवेश से ऊपर है। मनुष्य अथवा जीव इन्द्रियों के परतन्त्र हैं। मनुष्य इन्द्रियों के अधीन हैं पर भगवान् इन्द्रियों के अधीन नहीं हैं। इसीलिए भगवान् को गोविन्द कहा जाता है। 'गाः विन्दति' जो इन्द्रियों को सेविकाओं के रूप में स्वीकार करते हैं उन्हें गोविन्द कहते हैं इन्द्रियाँ हमारी सेविका नहीं हैं। इसलिए श्री रामचरितमानस के सुन्दरकाण्ड में विभीषण कहते हैं कि भगवान् गौओं अर्थात् इन्द्रियों, ब्राह्मणों, धेनु अर्थात् गौओं और देवताओं का हित करने के लिए मनुष्य शरीर स्वीकार करते हैं-

गो द्विज धेनु देव हितकारी।

कृपासिंधु मानुष तनुधारी॥

इसलिए हमको अपनी परिस्थितियों के आधार पर भगवान् का आकलन कभी नहीं करना चाहिए। भगवान् सबके ऊपर हैं, भगवान् शरीर नहीं हैं, भगवान् मन नहीं हैं। भगवान् बुद्धि नहीं हैं, भगवान् आत्मा भी नहीं हैं, भगवान् आत्मा से ऊपर हैं।

इन्द्रियाणि पराण्याहुरिन्द्रियेभ्यः परं मनः।

मनसस्तु पराबुद्धिर्योबुद्धे परतस्तु सः॥

गीता ३/४२

बुद्धि से परे है जीवात्मा और उससे भी यहाँ परतः लिखा और उससे भी परे हैं परमात्मा, इसलिए भगवान् सबसे ऊपर हैं। अतः भगवान् के सम्बन्ध में उसी दृष्टिकोण से विचार करना पड़ेगा। हम यह कह रहे थे कि ये इन्द्रियाँ भगवान् की दासियाँ हैं, भगवान् इनके वश में नहीं हो सकते और न ही इनके आधार पर भगवान् का कोई सिद्धान्त निर्मित होता है। भगवान् तो वही करते हैं जिससे उनके भक्त का अनुरन्जन होता है। भगवान् की लीलाएँ केवल हम जैसे प्राणियों के कल्याण के लिए होती हैं। इसलिए रासपंचाध्यायी की चर्चा करते हुए शुकाचार्य जी ने परीक्षित जी को सावधान किया, महाकर्मेशः.....

अवध बिहारी ने.....

□ आचार्य दिवाकर शर्मा

अवध बिहारी ने आज मेरा मन लूटा।
भवभयहारी ने आज मेरा मन लूटा।।
छूट गये सब संगी साथी
घर परिवार भी छूटा। अवधबिहारी ने....
पुत्र मित्र और जाया माया
सबका प्रेम है झूठा। अवधबिहारी ने....

काम क्रोध मद लोभ मोह
और कुबुद्धि का भाँडा फूटा। अवधबिहारी ने....
ज्ञान ध्यान सब धरा रह गया
पाया तत्त्व अनूठा। अवधबिहारी ने....
चरणकमल में चित्त लगा तो
मोहन्याश भी टूटा। अवधबिहारी ने....

गतांक से आगे

शिखा की वैज्ञानिकता का रहस्य

□ पूज्यपाद पं० दीनानाथ शास्त्री सारस्वत

(१६) पुरुष शक्ति के यौवन का विकास सुख-छाती आदि स्थानों में केशनिर्गम के द्वारा होता है, किन्तु स्त्री के यौवन का विकास इस केशनिर्गम द्वारा न होकर मासिक ऋतुधर्म स्वनों में दूब तथा जरायु की वृद्धि द्वारा होता है। जब यौवन-विकास के साथ केश-निर्गम का सम्बन्ध है तो जिस प्रकार वृक्ष की शाखा काटने से उसमें नवीन शाखा निकलने का वेग बढ़ता है, उसी प्रकार प्रतिदिन केश काटते रहने से या दाढ़ी-मूँछ मुण्डवाते रहने से यौवन का वेग भीतरी कामशक्ति रूप में स्नायुओं में अधिक प्रकट होता है और वह शुक्र के बाहर करवाने में सहायक होकर क्रम-क्रम से क्षीणता को प्राप्त करता जाता है। यही कारण है कि- ब्रह्मचारी, एवं वानप्रस्थी के लिए विशेषकर केशधारण की विधि शास्त्रों में आई है। केश धारण करने से काम-सम्बन्धी नसों का वेग स्वभावतः दबा रहता है और शुक्र के बाहर होने की उत्तेजना प्राप्त नहीं होती। सन्यासी तो उस यौवनावस्था का पार करके ही होता है, पहले भी सन्यासी हो जावे, तो 'सोऽहम्' भाव में अभेदबुद्धि वश काम की चिन्ता ही नहीं रहती, अतः यतिगण मुण्डन कराते हैं। गृहस्थावस्था में यौवन का कुछ उपयोग अपेक्षित होता ही है। अतः गोखुर इतने केश सिर के मध्य में रखकर शेष केश समय-समय पर कटाये जाते हैं। गोखुर में सिर के मध्य का अंश, और कुछ पीछे का अंश ढक जाता है, वही शिखा के रूप

में सिर के ऊपर रहता है। योगशास्त्र के सिद्धान्तानुसार सिर के मध्य के उस अंश के नीचे ब्रह्मरन्ध्र और ब्रह्मरन्ध्र के ठीक ऊपर सहस्रदल कमल में परमात्मा का केन्द्र स्थान है। इन दोनों अंशों में शिखास्थान में केशराशि रखने से आत्मिक शक्ति बनी रहती है और काम-चिन्तनशक्ति दबी रहती है। इसी कारण हिन्दुजाति में शिखा के रखने के कारण ही बल, आयु, तेज, आत्मचिन्तन, काम का संयम भी दीखता रहा है, अन्य जातियों में वैसा न रहने से उच्छृङ्खलता, नास्तिकता, कामुकता, विलासिता, कायरपन आदि स्वाभाविक होते हैं। अब हिन्दुओं में भी शिखा की स्थापना में आस्था घटती जाने से पूर्वोक्त गुण भी घटते चले जा रहे हैं और अन्य दुर्गुण बढ़ते चले जा रहे हैं। जो गुण जिसके होने पर होता है, जिसके नष्ट होने पर नहीं होता, वह उसी का धर्म माना जाता है।

ध्यान के समय ओज शक्ति प्रकट होती है। यदि परमात्मा का ध्यान किया जाय तो मस्तक के ऊपर शिखा के रास्ते से ओज शक्ति प्रकट होती है परमात्मा की शक्ति उसी पथ से अपने भीतर आया करती है। इससे तेज आयु आदि की वृद्धि होती है। परमहंस यति लोग सदा ही ब्रह्म से मिले रहते हैं, इसलिए उन्हें पृथक् रूप से शिखा द्वारा शक्ति खींचने की आवश्यकता नहीं होती है। ब्रह्मचारी और वानप्रस्थी शिखा और जटा द्वारा, गृहस्थी लोग गोखुर-शिखा द्वारा इस शक्ति का ग्रहण करके अपनी आध्यात्मिक

तथा आधिदैविक उन्नति प्राप्त करते हैं। शिखाधारण, शिखास्पर्श, शिखाबन्धन आदि प्रक्रिया द्वारा सहस्रदलकमल की ओर झुकाव रहने से आत्मदृष्टि मनुष्य में बढ़ा करती है- वही शिखा का रहस्य है।

बार बार बाल छंटवाते रहने से, शिखा न रखने से दाढ़ी मूँछ बार-बार मुण्डाते रहने से कामसम्बन्धी नसों में उत्तेजना फैलती है। अतः ऐसे मनुष्य प्रायः विषयी एवं विलासी हुआ करते हैं। स्थूल शरीर के सुन्दर बनाने में लगे रहने से उन्हें शिखा उसमें असुन्दरता का कारण प्रतीत होने से उसे वे कटा डालते हैं। ऐसे पुरुष वा जातियाँ आत्मोन्नति को खोकर विषय-विलासी बने रहते हैं। इसी कारण हमारे शास्त्रों में शेष बाल भी जब चाहे न कटवाकर किसी तिथि-विशेष वा नक्षत्र-विशेष वा वार-विशेष में मुण्डित करने का आदेश दिया है। ऐसा करने से उस आदेश के वशंवद होने से हममें सुन्दरता का भाव तथा तन्मूलक कामोत्तेजना नहीं रह पाती। इसके अतिरिक्त उस तिथि के देवता वा नक्षत्र के देवता, वा वार के देवता से संयम शक्ति में सहायता प्राप्त हो जाती है, और उस दिन नखकेशादि में जीवन नहीं रहता अर्थात् मनुष्य शरीर के साथ उनका चेतनता सम्बन्ध नहीं रहता। अतः ऐसे समय में केश कर्तन मुण्डनादि द्वारा हमारी नसों में उच्छृङ्खल कामोत्तेजना भी नहीं होती। हमारे सूक्ष्मदर्शी प्राचीन महानुभाव सूर्यनक्षत्रादि देवताओं का हमारे शरीर पर भिन्न भिन्न दिन भिन्न भिन्न प्रभाव जानते थे, जिसका आभास कभी-कभी आज के वैज्ञानिकों को भी हो जाता है। अतः कई तिथि-विशेषों में स्त्री गमनादि का भी हमारे पूर्ण वैज्ञानिक महानुभाव निषेध कर

गये हैं। तिथि-विशेष में काटे गये हमारे केशादि यदि किसी जादूगर के हाथ में पड़ भी जाय, तब भी वह हमारा अनिष्ट करने में सक्षम नहीं हो सकता। बिना वार, तिथि, नक्षत्र का विचार किये केवल सुन्दरता का लक्ष्य करके केश आदि कटवाते रहने से, क्षुर वा रेजरोंका जब-तब प्रयोग करते रहने से, हमारी कामोत्तेजना की वृद्धि पुंस्त्वनाश, यौवन का सौख ही जीर्ण शीर्णता को प्राप्त हो जाना इत्यादि बातें हुआ करती हैं। उसका दुष्परिणाम प्राचीन मर्यादाओं को तोड़ रहे हुए हम लोग प्राप्त करते हुए दिनों दिन हास को प्राप्त होने जा रहे हैं।

(१७) स्त्रियों के लिए केश काटना नहीं है, क्योंकि उनका स्त्री शक्तिविकाश ऋतुधर्म जरायु आदि द्वारा होता है, अतः स्त्रियाँ अपने प्राकृतिक धर्म को छोड़कर यदि पुरुषों की तरह बाल कटवाना प्रारम्भ करेंगी तो उनमें स्त्रीसुलभ शक्ति घट जायगी, उनमें ओज की न्यूनता तथा मातृभाव का नाश होकर पुरुषभाव आने लग जायगा, और जरायु, प्रसव, मासिकधर्म आदि के विषय में अनेक रोग उत्पन्न होकर उनके शरीरों को भीतर से खोखला कर डालेंगे। प्रायश्चित्त में भी उनका केवल चार अंगुल केश काटने के विधि है, पूरा शिरोमुण्डन नहीं किया जाता। केश रखने से ही उनके उत्पन्न होने वाले बच्चों के मस्तिष्क को भी लाभ पहुँचता है। हाँ, निवृत्ति के आश्रम में उन्हें (स्त्रियों को) भी मुण्डन आदिष्ट है। वैधव्य स्त्रियों का सन्यास है, उसमें निवृत्तिवश उत्तेजना की आवश्यकता नहीं रहती, अतः वैधव्य में स्त्री का केश पूरा काट देने का विधान वेद-शास्त्रानुशिष्ट है।

क्रमशः.....

सतयुगी तीर्थ नैमिषारण्य

□ डॉ० हरप्रसाद स्थापक 'दिव्य'

नैमिषारण्य पवित्र तीर्थ का, जग करता अभिनन्दन है।।टेक।।
 परम्परागत गाथाओं की, कीर्ति पताका फहराई है।
 अठासी हजार ऋषि मुनियों ने, तप से गरिमा पाई है।।
 तैत्तिरीय कोटि देवता रहते, यह बनी हुई परिपाटी है।
 भारत माता का यह गौरव, चन्दन इसकी माटी है।।
 ज्ञान-गरिमा का पावन क्षेत्र, सुसंस्कारों का नन्दन वन है।।१।।
 गोमती नदी का पवित्र जल, जो पापों का क्षय करता है।
 यहाँ तीन कोटि तीर्थों का, स्नान नित्य हुआ करता है।।
 आदि शक्ति ललिता देवी का, शक्ति पीठ सिद्धि देता है।
 'व्यास',-'सूत' गङ्गियों सेस, पुराणों का सत्य प्रकट होता है।।
 हनुमान गढ़ी में 'नेमी' रक्षक, शंकर स्वयंकेशरी नन्दन हैं।।२।।
 'मनु'-'सतरूपा' को सतयुग में, तप से पुत्र प्राप्ति का वर पाया।
 'त्रेता' में दशरथ-कौशिल्या बन, पुत्र-'राम' गोद में आया।।
 'नमो राघवाय' सब भजते, यज्ञ हवन पूजन करवाते।
 पुत्र-पौत्र प्राप्ति के हित, सत्यनारायण की कथा कराते।।
 हे! अग-जग के सतयुगी तीर्थ, स्वीकारो सबका वन्दन है।।३।।
 मोक्ष दायिनी नगरी यह, 'रामभद्राचार्य' जी को प्यारी है।
 भक्तन को सुख देने वाली, जगद्गुरु की महिमा न्यारी है।।
 भागवत कथा श्रवण से होता, जन-जन का कल्याण है।
 जीवन की सच्चाई झलकती, यह शाश्वत जीवन गागन है।।
 महिमा मण्डित गुरु चरणन में, शिष्यों का शत-शत वन्दन है।।४।।
 जगद्गुरु की महती कृपा से, होते प्रसन्न भगवान हैं।
 सद्गुरु के सदोपदेशों से, बनते शिष्य महान हैं।।
 संत समागम हरि कथा से, बनते शिष्य महान हैं।
 संत समागम हरि कथा से, मिलते जीवन के उपदेश हैं।
 सच्चा सुख अक शांति मिले, कटते जनम-जनम के क्लेश हैं।।
 भागवत कथा श्रवण से, छूट जाय जग का बन्धन है।।५।।

श्रद्धा-कर्म अनिवार्य हैं

□ श्री जगदीशप्रसाद गुप्त (जयपुर)

श्रद्धाकर्म निरर्थक नहीं हैं सार्थक हैं। भारतीय संस्कृति के उन उच्च आदर्श एवं आचरण के दर्पण हैं, जहाँ श्रद्धा-कर्त्ता और श्रद्धा-कर्त्ता के पितृजन के स्वरूप प्रतिबिम्बित होते हैं। व्यक्ति विशेष के लिए श्रद्धा-कर्म निरर्थक हो सकते हैं-ये श्रद्धा एवं सम्मान के प्रतीक हैं। कैदी पिता शाहजहाँ अपने पुत्र औरंगजेबक को यह सन्देश देता है- “धन्य हैं वे हिन्दू जो अपने मृतक माता-पिता को भी खीर और हल्वा-पूड़ी से तृप्त करते हैं और तू अपने जिन्दे बाप को भी एक पानी की मटकी तक नहीं दे सकता। तुझसे तो वे हिन्दू अच्छे, जो मृतक माता-पिता की भी सेवा कर लेते हैं।”

आइये, चर्चा करें श्रद्धा प्रकरण की। चर्चा तो हमारे सभी शास्त्रों वेद, पुराण, उपनिषद, स्मृति में हुई है और श्रद्धा-कर्म परम्परा से होता आ रहा है। शास्त्र या बड़े लोग उसे ठीक बतलाते हैं तो उसका आचरण भी आवश्यक हो जाता है, त्याग नहीं करना चाहिए। श्रद्धा विषय को सरल रूप में समझने के लिए इतना ही मानना पर्याप्त है कि मृत्यु के बाद जीव स्थूल-शरीर को छोड़कर सूक्ष्म शरीर में रहता है और पुनर्जन्म लेता है। एक जीव अपने कर्म एवं प्रारब्ध के अनुसार दूसरे जीवों से सम्बन्ध स्थापित करता है- कोई माता, कोई पिता, कोई भईया बहिन, कोई स्त्री, कोई पुत्र, कोई मित्र, ऐसे सैकड़ों सम्बन्ध बनते हैं। मरने के बाद दूसरे जन्म में, जिनका पुत्र बनना है, सम्भव है, उन माता-पिता बनने वाले जीव का उपयुक्त शरीर में जन्म ही न हुआ हो, तब तक वह जीव उनकी प्रतीक्षा करता रहता है। उस स्थान को प्रतीक्षालोक न कहकर शास्त्र की भाषा में उसे पितृ-लोक कहते

हैं और उस लोक के नियन्ता, व्यवस्थापक का नाम ‘अर्यमा’ है। यह आवश्यक नहीं है कि सभी जीव पितृलोक में प्रतीक्षा करते हों। जन्म लेने की उपयुक्त परिस्थिति विद्यमान हैं तो वह जीव तत्काल जन्म ले सकता है, उपयुक्त परिस्थिति विद्यमान नहीं है तो उसे प्रतीक्षा करनी ही है। प्रतीक्षा की कोई अवधि निश्चित नहीं है।

जीवित अवस्था में दो प्रकार की भूख लगती है- पहली, “दैहिक भूख”, जो खाद्य पदार्थ खाने से मिटती है, और दूसरी, मन की भूख, जिसका सम्बन्ध स्थूल शरीर से नहीं, मन से होता है, इसे “तृष्णा” कहते हैं। पेट भरा रहता है, मन नहीं मरता, कुछ और चाहता है। मरने के बाद, जीव के पास स्थूल शरीर नहीं है, सूक्ष्म-शरीर है, उसे दैहिक-भूख नहीं लगती, उसे मन की भूख लगती है। उसके मन में, ‘मन की भूख मिटने की भावना बनती है। उसकी तृप्ति हो जाय, इसके लिए उके मन में भावना बननी चाहिए कि मैंने अमुक पदार्थ भोगा मैं पा गया। इसके लिए, पितृ-लोकस्य जीव का एक सच्चा-प्रतिनिधि इस लोक में ब्राह्मण को बनाया जाता है- उसके भोजन को वह अपना भोजन मान सके और उसके मन की भूख मिट जाये, वह तृप्त हो जाए। यह अनुभव की तृप्ति का हेतु है, उसकी तृप्ति की व्यवस्था का नाम ही श्रद्धा है।

इस श्रद्धा-व्यवस्था से पितरों (जिनका श्रद्धा किया जाता है) को पितृलोक में मन की भूख को तृप्ति मिलती है। अगर वह पितृ-लोक में नहीं है, जिस योनि में है, वहीं उसको तृप्ति मिल जायेगी। अगर वे पितृ कहीं नहीं हैं (पितृ-लोक में नहीं हैं और

किसी योनि में नहीं है), मुक्त हो गए हैं तो वह तृप्ति स्वयं श्रद्धा-कर्ता को होगी और उसे सदैव अति आनन्द व सुख बना रहेगा। जीव ने पुनर्जन्म ले लिया या मुक्त हो गया, कहा नहीं जा सकता-इस अनिश्चितता की स्थिति में सभी के श्राद्ध का विधान बना लिया है। श्राद्ध-पक्ष में, पितृ-लोक से पितृजन वायु रूप में ब्राह्मण के साथ भोजन करते हैं। प्राचीन कथाएँ प्रचलित हैं-

१. भीष्म पितामह जब अपने पिता का श्राद्ध कर रहे थे तो गंगा जी से पिता जी का हाथ बाहर आया।

२. देवी सीता ने पुष्कस्तीर्थ में अपने ससुर आदि तीन पितृों को श्राद्ध में निमन्त्रित ब्राह्मणों के शरीर में प्रविष्ट हुआ देखा था।

३. महाराष्ट्र में सन्त ज्ञानेश्वर जी ने उनके पिता के श्राद्ध पर ब्राह्मणों के भोजन करने से अस्वीकार कर देने पर, अपने योग-बल से उन्हीं ब्राह्मणों के दिवंगत पितृों को आमन्त्रित करके प्रत्यक्ष भोजन कराया।

४. उक्त प्रकार की कथा श्री एकनाथ जी महाराज के लिए भी प्रसिद्ध है।

गरुड़-पुराण (१०।४-७) में भगवान श्रीकृष्ण ने गरुड़ जी से कहा है कि जीव का किसी योनि में पुनर्जन्म हो जाता है तो श्राद्ध से तृप्ति उनके आहारानुसार मिलता है-जैसे देव योनि को श्राद्धान्न अमृत होकर उसे प्राप्त होता है, गन्धर्व-योनि में श्राद्धन्न भोगरूप से और पशु-योनियों में तृणरूप में, वही अन्न नागयोनि में वायु रूप से, पक्षी की योनि में फलस्वरूप से और राक्षसयोनि के लिए माँस, प्रेत के लिए रक्त, मनुष्य के लिए अन्नपानादि तथा बाल्यावस्था में भोग रस हो जाता है।

हमारे शास्त्रों में यह चर्चा की गई है कि श्राद्ध-

कर्म से वंचित पितृजन पितृलोक छोड़कर प्रेत बनकर प्रेत-लोक में चले जाते हैं और अपनी सद् गति के लिए अपनी अतिसमझदार सन्तान को नहीं कहकर अन्य धार्मिक व्यक्तियों को प्रेरित करते हैं कि वे उनके उद्धार के लिए श्राद्ध करें। ऐसे अनेक दृष्टान्त सुनने को मिलते हैं कि दूसरे लोगों ने प्रेत का श्राद्ध किया और उसे सद्गति प्राप्त हुई। गीताप्रेस, गोरखपुर से प्रकाशित “कल्याण” के आदि सम्पादक नित्यलीलालीन भाई जी श्रीहनुमानप्रसाद पोद्दार ने अपने एक लेख में वर्णन किया है कि बम्बई की समुद्रतटीय चौपाटी पर उनसे एक बार सफेदपोश में एक पारसी प्रेतात्मा ने उनके पास बेंच पर बैठ कर यह प्रार्थना की थी- “हमारे धर्म में श्राद्ध को नहीं मानते, परन्तु मेरी जीवात्मा प्रेत के रूप में भटक रही है। आप कृपा करके मेरे उद्धार के लिए कुछ करें।” श्रीपोद्दार जी ने उस प्रेतात्मा के लिए श्राद्ध किया और उसे सद्गति प्राप्त हुई।

भारतीय ज्योतिष में वर्णन है कि पितृदोष से मांगलिक कार्य नहीं हो पाते, अनेक अकस्मात् बाधाएँ उत्पन्न होती हैं, सन्तान नहीं होती होती है तो विकलांग होती है, आर्थिकस्थिति कमजोर रहती है। पितृ-दोष निवारण के लिए श्राद्ध-पक्ष में, विशेषतः अमावस्या के दिन श्रद्धापूर्वक श्राद्ध करें, जिससे पितृजन प्रसन्न होंगे। खर्चीला श्राद्ध करने की आवश्यकता नहीं है। अपने दोनों हाथ से कुशा उठाकर दक्षिणामुखी होकर आकाश की ओर उनका ध्यान करते हुए आर्तभाव से पुकारना, जलांजलि देना ही पर्याप्त है, यह श्राद्ध है। ऐसे श्राद्धकर्ता के लिए गरुड़ पुराण में याज्ञवल्क्यजी ने ऋषियों से कहा है कि वह श्राद्धकर्म करके पुत्र सर्वजन श्रेष्ठता, सौभाग्य, समृद्धि, प्रभुरवता, मांगलिक दक्षता, अभीष्ट कामना-पूर्ति, वाणिज्य में लाभ, निरोगता, यश, शोकाराहित्य, परमगति, धन, विद्या,

वाक्-सिद्धि, पात्र, गौ, अज, आविक (भेंड), अश्व और दीर्घायु प्राप्त कर अन्तकाल में मोक्षलाभ प्राप्त करता है।

धूमधाम से श्राद्धकर्म करना महत्त्वपूर्ण नहीं और भयभीत होकर कृत्रिम श्रद्धा से श्राद्ध का प्रदर्शन करना भी महत्त्वपूर्ण नहीं है, अगर उसने माता पिता, पितामह, गुरुजनों आदि की जीवित अवस्था में सेवा नहीं की है, सम्मान और सद् व्यवहार नहीं रखा है, उन्हें सदैव दुखी रखा है, भूखा-प्यासा रखा है और उनके साथ गाली-गलौच मारपीट तक की है। किसी भी श्राद्ध-क्रिया से उनके पितृ-दोष निवृत्त नहीं हो सकता। जीवित अवस्था में जो उनसे तृप्त नहीं हुआ, वह पितृलोक में कैसे तृप्त होगा? उनका श्राद्ध करना

निरर्थक है, उन्हें अपने कर्मों का अशुभ फल भोगने ही है।

इसी जन्म के कर्मों से प्रारब्ध बनता है, इससे कर्म भोग की बात बनती है। शाश्वत सत्य तो यह है जिन्हें अपने माता पिता प्राणतुल्य प्रिय रहे हैं, जीवित अवस्था में उनकी की गई सेवा ही उनके प्रति स्थायी सार्थक श्राद्ध है, उससे ही चारों पदार्थों-अर्थ, धर्म, काम व मोक्ष की प्राप्ति होती है। भगवान श्रीराम की वाणी है-

चारि पदारथ कर तल ताकें।

प्रिय पितुमातु प्राण सम जाकें।।

रामचरितमानस-अयोध्याकांड-४६(२)

□□□

हमारी आराध्य देवी आद्याशक्ति महामाया

□ जगदीशप्रसाद शर्मा शास्त्री

ब्रह्मा जी अपने प्रिय पुत्र नारद को समझाते हुए बोले- आद्याशक्ति महामाया भगवती ही सम्पूर्ण संसार की आदि कारण हैं। वही संसार की उत्पत्ति करती हैं, वही संसार का पालन करती हैं और वही प्रलयकाल में संसार को अपने में समेट लेती हैं। वे ही सबकी आदि जननी हैं। वे मूलप्रकृति हैं। उनका कभी नाश नहीं होता। वे देवी परब्रह्म की इच्छा हैं। वे नित्य हैं और उनका विग्रह भी नित्य है। महाविद्या, महामाया, विश्वेश्वरी, वेदगर्भा और शिवा उनके नाम हैं। वही भुवनेश्वरी हैं। उनके चरण कमल के समान कोमल हैं।

परम रहस्य की बात यह है कि भगवती भुवनेश्वरी के चरण नख में ही यह जड़-जंगममय संपूर्ण ब्रह्मांड समाया है। ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, वायु, अग्नि, सूर्य, यमराज, चंद्रमा, वरुण, कुबेर, इन्द्र, पर्वत, समुद्र, नदियां, गन्धर्व,

अप्सरायें, नारद, वसुगण, बैकुण्ठलोक, ब्रह्मलोक तथा शिवलोक सबक सब भगवती के चरण नख में स्थित हैं। स्वयं भगवान विष्णु आद्याशक्ति भगवती की स्तुति करते हुए कहते हैं- हे भगवती भुवनेश्वरी! यह सम्पूर्ण संसार तुम्हारे भीतर विराजमान है। नाटक दिखलाने वाले नट की भांति तुम्हीं इस जगत की सृष्टि, पालन और संहार करती हो। तुम्हारी ही माया इस जगत को सजाती है। तुम मनोरंजन के लिए लीला कर रही हो। तुम्हारे तेज से सारा संसार उत्पन्न हुआ है। देवि, प्रलयकाल के समय तुम संसार का भक्षण कर लेती हो। तुम्हारे तेज से संपन्न होने पर ही सूर्य जगत को प्रकाशित करता है। तुम ही ब्रह्मा, विष्णु, शिव को उत्पन्न करती हो और तुम ही शक्ति प्रदान करती हो। तुम्हारी कृपा से हम तीनों (ब्रह्मा, विष्णु, शिव) जगत का कार्य संपादन करते हैं।

मधुरोपासक श्रीमोदलता की भावसाधना

□ डॉ० कृष्णचन्द्र 'मयङ्क'

मिथिला संत शिरोमणि श्रीमोदलता जी मधुररस तथा मधुरोपासना के अप्रतिम उद्गाता के रूप में विश्रुत हैं, जिन्होंने श्रीसीताराम विवाह-पदावली की रचना के द्वारा अपनी कुशाग्रीय शेमुषी को प्रथित किया है। श्रुति प्रोक्त 'मधुविद्या' में मैथिल याज्ञवल्क्य भी घिषणा की धन्यता प्रकट हुई है।

उन्होंने अपनी भार्या मैत्रेयी के प्रति मधुविद्या उपदिष्ट करते हुए कहा कि सूर्य, चन्द्र, आय, पृथ्वी आदि अखिल प्राणियों के लिए मधु हैं तथा समस्त प्राणी सूर्यादि हेतु मधु हैं। अन्ततः याज्ञवल्क्य ने आत्मा (अततेवी, आप्तेवी) को ही संपूर्ण प्राणियों के लिए मधु कहा-

‘अयमात्मा सर्वेषां भूतानां महवस्त्रै’

वस्तुतः सूर्यमण्डलस्थमधु को आयत्र करना ही साधना का चरमोत्कर्ष है। सविताराधकों के द्वारा इसी मधु का आनयन होता है। ऋग्वेद की 'मधोर्धाराभिरोजसा' "इन्द्रात्र सिच्यते मधु" जिन्वन्कोशं मधुश्चुतम् 'मधु जिह्वा सुपाचय' 'विष्णोः पदे परमं मह व उत्सः' आदि उक्तियाँ मधुविद्या को ही प्रथित करनी हैं।

भक्ति के पञ्चरसों-शान्त, दास्य, सख्य, वात्सल्य तथा मधुर में इस मधुररस की श्रेष्ठता ही कथित होती है। इस रस में तन्मयासक्ति, कान्तासक्ति, अनन्यासक्ति, परमविरहासक्ति आदि का प्राकट्य होता भी चिन्मय जगत् में भगवान् को ही एकमात्र भोक्ता कहा गया है। शेष सभी प्रकृति रूपेण भगवान् की भोग्या हैं। अखिल जीवों की काया प्रकृति विनिर्मित होने के कारण, यह आवश्यक हो जाता है

कि परमा प्रकृति की सन्निधि के द्वारा क्षराअरातीत-पुरुषोत्तम की कृपा प्राप्त की जाय। इसीलिए श्रुति ने 'सख सखिभ्यः ईड्यः' का उद्घोष किया है।

श्रीमोदलता ने प्रीति की पराकाष्ठा महाभाव को मिथिला लीला के परिप्रेक्ष्य में प्रथित किया है। प्रेम की स्नेह, मान, प्रणय, राग, अनुराग भाव तथा महाभाव से अष्ट अन्तर्दशाएँ हैं। इस महाभाव के उभय भेद-रूढ़ तथा अधिरूढ़ कथित हैं। पुनः अधिरूढ़ को भेद मादन तथा उन्मादन हैं। मादन (मोदन) स्थिति सखी-यूथ में संभव है। श्रीकिशोरों उन्मादन की अधिष्ठात्री हैं। उनकी काया की पीतिमा तथा उगवलना का संचार जब श्रीराम भी श्यामल काया पर हुआ, तब हरि में हरित्व का आगमन हो गया। यह किशोरी की कृपा का ही परिणाम है। श्रीमोदलता जी ने लिखा है-

“देखिअनु देखिअनु ये बहिना।

हरिओ हरिअर मेला होइते वैदेही दहिना।”

श्रीमोदलता जी ने सीताराम विवाह विषयक पदों की रचना की ब्रह्मा तथा जीव की सम्बन्ध-स्थापना के भाव को दृढ़ किया है। 'गुहा प्रविष्टापमानौ हि तद्दर्शनात्'- इस ब्रह्मसूत्र के अनुसार आत्मा-परमात्मा का निवास तो हृदय में है, फिर भी उसकी व्यापक अनुभूति नहीं होती है। 'आत्मास्त्र जन्तोर्निहितं ग्रहायाम्'- यह श्रुति भी इसे सिद्ध करती है। वस्तुतः सम्बन्ध स्थापना के पश्चात् ही, ब्रह्मा का प्राकट्य संभव है। मिथिलावासियों ने दुहलासरकार को राग समर्पित की, परम धन्यता को प्राप्त किया।

ब्रह्म की तीन शक्तियाँ संवित्, संधिनी तथा आह्लादिनी कथित हैं। ज्ञानात्मिका तथा सत्तात्मिका शक्ति के लिए आह्लादात्मिका शक्ति है भी है, जिनकी कृपा से ही भक्त्यानाद प्राप्त होता भी श्रीसीता, भगवान राम की आह्लादिनी शक्ति हैं। ये अपने कर्मों से प्रभु को वशीभूत करती हैं। “सिनोति वशं करोति स्वकर्मणः भगवातम् सा सीता।” महाभाव दशा में श्रीकिशोरी प्रियतममयी हो गाती हैं। श्रीमोदलता जी का कथन है-

“प्रियतम प्यारी अहाँका अनन्या।
रोम-रोम रँग श्याम में रँगलनि,
त्यागि सकल रंग अन्या।
‘मोद’ प्रमपथ में श्री मैथिलि अहाँ से सौगुन धन्या।”

श्रीमोदलता ने काञ्चन वन तथा कमलातट के कुंजों, निकुंजों तथा निमृतनिकुंजों के रस-रहस्य को पल्लवित कर भाव जगत् में अप्रतिम सुषमा की स्थापना की है, जो रसिक संवेद्य है। कुंज में प्रिया-प्रियतम की उपस्थिति के साथ सखियों का निर्वाद्य प्रवेश होता है। निकुंज में मात्र प्रिया-प्रियतम ही रहते हैं। मंजरियाँ (अल्यवयस्काएँ) द्वय रक्षिका होती हैं। सखियाँ लता-रन्ध्र से युगलछवि का अवलोकन करती हैं। निमृत निकुंज में प्रियतमा प्रियतम की काया में समाहित हो जाती हैं वा प्रियतमा, प्रिया की काया में अन्तर्लीन हो जाते हैं। श्रीमोदलता ने युगलछवि के आलम्बनत्व में अपनी वाणी-सरस्वती की सुषमा को प्रथित करने का महत्त्वपूर्ण प्रयास किया है-

“दमकै छनि केहन अति दिव्य दमक,
सखि, देखिअन-देखिअन-देखिअन ये।
शत कोटि ससिहिं सौं रन्य रमक,
सखि, देखिअनु देखिअनु देखिअनु ये।।”

भावजगत् में मिथिला लीला को ही ‘रामायण’ की संज्ञा प्रदान की गई है। श्रीराम ने मिथिला का कभी त्याग ही नहीं किया। वनगमन तथा रावणवधादि लीलाएँ तो विष्णु, लक्ष्मी तथा शेष के द्वारा सम्पन्न हुईं। मिथिला लीला पूर्णलीला हैं, क्योंकि इसमें रामायण के सभी पात्रों की विद्यमानता है। श्रीमोदलता जी की रचनाधार्मिक, उपर्युक्त कथन के आलोक में प्रतिफलित हुई है, जिसमें मधुररस की अभिव्यक्ति के साथ-साथ, रसोचित रीति, गुण, वृत्ति, बिम्बादि का विनियोग चित्राकर्षण है।

मिथिला-भाव के अप्रतिम व्याख्याता के रूप में श्रीमोदलता जी की कीर्ति दिशाओं में विसृत्व होती गयी है। मैथिली तथा ब्रजी इन उभय भाषाओं पर समानगति से अधिकार रखने वाले मोदलता की कारयित्री प्रतिमा की महती प्रशंसा की जाती है। मैथिली साहित्य के इतिहासकारों ने भी इनकी साधना पर ध्यान नहीं दिया है, यह चिन्ता का विषय है इन्होंने सीताराम विवाह के द्वारा जीव तथा ब्रह्म की सम्बन्ध-शाश्वतता का दिव्य उद्घोष किया तथा रसिक शिरोमणि के रूप में सम्पूर्ण भक्त-जगत में महती प्रतिष्ठा प्राप्त की।

सम्प्रति, मोदलता जी की काव्यसाधना पर, मिथिला विश्वविद्यालय, दरभंगा से शोध कार्य भी सम्पन्न हुआ है इनकी इस साधना पर विद्वानों के विविध आलेख भी प्रकाशित हुए हैं तथा साहित्य अकादमी के द्वारा इनके जीवनवृत्त के प्रकाशन पर भी विचार किया जा रहा है।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि श्रीमोदलता ने सीताराम विषयिणी मधुर भक्ति तथा मधुरोपासना को वाणी प्रदान कर महत्त्वपूर्ण कार्य किया है।

□□□

मूल्यों के संकट की महामारी

मूल मानवीय संस्कारों के खत्म होते जाने को स्वाइन फ्लू जैसी बिमारियों का कारण मान रहे हैं

□ श्री तरुण विजय

नदियों को सुखाकर जहां आवासीय कालोनियां बनें, पशुओं को अकथनीय ढंग से तड़पा-तड़पा कर उनकी खाल से बने कोट 'संभ्रांत और कुलीन' लोग पहनें, खेती की जमीन पर सिनेमाहाल और मल्टीप्लेक्स खोले जाएं तथा रासायनिक खाद से 'जल्दी और ज्यादा' फसल उगाही के लाभ में जमीन को जहरीला बनाया जाए वहां स्वाइन फ्लू तथा एड्स जैसे रोग नहीं फैलेंगे तो क्या अमृत वर्षा होगी? जिन रोगों से आज पृथ्वी आक्रांत है और अरबों डालर खर्च करने के बाद भी जिनसे निजात पाना संभव नहीं हो रहा है वे सब मनुष्य की अप्राकृतिक वासनाओं और जुगुप्साजनक सीमा पर पहुंची भोगलिप्साओं का स्वाभाविक परिणाम है। वैज्ञानिक अपनी प्रयोगशालाओं में इनके समाधान खोजेंगे, पर प्रकृति पर विजय पाने की पश्चिमी मानसिकता ने पृथ्वी को आहत किया है। पहले उन्होंने दूसरी आस्था और समाज को बर्बरता से कुचला। कोलंबस की खोज के बाद चार करोड़ रेड इंडियन तो अमेरिका में स्पर्णभक्षी, ईसाइयत के आक्रामक प्रचारकों द्वारा किए गए संहारों में मार डाले गए। फिर सामी पंथों के जिहाद प्रायः छह करोड़ जाने लील गए। सामी पंथों की ही भांति तीसरा पंथ कम्युनिज्म उभरा, जिसके पुरोधाओं स्टालिन, माओत्से तुंग और पोलपोट के शासन में अनुमानतः १२ करोड़ लोग बर्बरताओं के

शिकार हुए और मारे गए। परमाणु बम जैसे जनसंहारक शस्त्र भी पश्चिम ने दिए। इन भोगवादी लिप्साओं के कारण पृथ्वी के प्राकृतिक वनों का घोर विनाश हुआ तथा मौसम में बदलाव आ गया। ग्लोबल वार्मिंग, कार्बन फुटप्रिंट आदि अंधाधुंध पश्चिमी औद्योगिकीकरण और प्राकृतिक नियमों के विपरीत जाकर अप्राकृतिक विश्व रचाने के परिणाम है। यह वह मानसिकता है जो पुरुष की पुरुष से शादी को स्वीकार्य, उचित व न्यायसंगत मानकर प्रकृति के निमयों का उपहास उड़ाती है, जो परिवार संस्था के पक्ष में दिए सब तर्क स्वच्छंद भोग की आधुनिक शैली में दफन करती है, जो स्त्री के मातृत्व को कारावास तथा डिस्को में बीयर पीकर गिर जाने को स्वातंत्र्य चेतना का प्रतीक मानती है, जो स्त्री की स्त्री से शादी और 'वन नाइट स्टैंड' को पेज थ्री की ग्लैमरस खबर बनाती है, जो पशु-पक्षियों को निर्दयता से मारकर उनके मांस भक्षण को 'नवीन युग' का प्रतीक मानती है।

फिर स्वाइन फ्लू, एड्स, बर्ड फ्लू और मैड काऊ रोग क्यों नहीं हों? एक साल में सत्तर हजार किसानों ने भारत में आत्महत्या की। ये सत्तर हजार किसान कितनी जमीन में खेती करते थे? कितना अन्न उगाते थे? किसी ने जानने की कोशिश नहीं की। सत्तर हजार अन्नदाता भूस्वामियों की आत्महत्या ने

देश का दिल नहीं दुखाया। आज व्यक्ति का मूल्यांकन धन कमाने की कला में प्रवीणता से माना जाता है, विधि-विधान के औचित्य-अनौचित्य का कोई महत्व नहीं है। अरुणाचल के जंगलों से प्लाइवुड बन गई, वरुणा और असि पर मकान बन गए, भारतपुझा नदी से लेकर यमुना तक गंदा नाला बन गई है या सूख रही है, माता-पिता के लिए अनाथालय खोलने वाले करोड़पति बेटे हैं तो डल झील के सिकुड़ते जाने से लापरवाह जिदाही सिर्फ साम्प्रदायिक नफरत के लिए मनुष्यों का रक्त बहा रहे हैं, तो बचेगा क्या? स्वाइन फ्लू का अर्थ है सुअर के संक्रमण से पैदा हुआ बुखार। सुअर को मारने के अजब तरीके अपनाए जाते हैं। पहले उनके नथुने काटे जाते हैं, वह तड़पता है, फिर उस पर नमक डालते हैं, वह फिर तड़पता है, इससे उसका मांस इकट्ठा होता है, फिर उसे सरियों से पीटते हैं, इससे उसका मांस नरम होता है। इससे भी ज्यादा बर्बरतापूर्वक गाय को मारा जाता है। ऐसे में स्वाइन फ्लू क्यों न हो?

हम वह बन जाना चाहते हैं जिसे पश्चिमी समाज अब त्याग रहा है। हम परिवार तोड़ रहे हैं, वे परिवार बचाने के तरीके ढूँढ़ रहे हैं। हम अपने बच्चों को न्यूक्लियर फैमिली यानी दादा-दादी, नाना-नानी रहित परिवार बसाने के फैशन से जोड़ रहे हैं तो वे फैमिली ट्री यानी अपने पुरखों की वंशावली ढूँढ़ने में हजारों डालर खर्च करते हैं। हम गे-शादियों को कानूनी जामा पहनाकर खुद को आधुनिक समझते हैं। बच्चों की परवरिश ठीक से संस्कारित कैसे हो, इसके उपाय ढूँढ़ने भारत आते हैं। हमारे शासक और विपक्षी दल

सत्ता, वैभव और व्यक्तिगत गुटबाजी को देश सेवा मान बैठे हैं। किसी भी पार्टी में संस्कारित राष्ट्रीय जीवन बचाने के संदर्भ में चर्चा और चिंतन करने का वक्त नहीं है। हमने कभी यह नहीं सुना कि कोई राजनीतिक दल देश की स्वास्थ्य सेवाओं सम्बन्धी नीति पर राष्ट्रीय संगोष्ठी कर रहा है। सीमावर्ती जिलों तथा संवेदनशील क्षेत्रों में, जहां आतंकवाद व्याप्त है, बच्चों की शिक्षा में क्या विशेष अवयव जोड़े जा रहे हैं? क्या मणिपुर में विद्यालयों में राष्ट्रगीत पर पाबंदी और हिंदी फिल्मों की जगह कोरिया की फिल्में दिखाने से दिल्ली में बैठे किसी पक्ष-विपक्ष के नेता को दर्द होता है? लेह से तवांग तक की हिमालयी पट्टी में बच्चों का स्वास्थ्य और मानस कैसा बन रहा है, इस पर कभी संसद में चर्चा हुई? चर्चा होती है नेताओं की सुरक्षा घटाने, रोकने के बारे में।

हम मूल मानवीय संस्कारों को खत्म कर अच्छे परिणाम की आशा कैसे कर सकते हैं? इस परिदृश्य में मंगल विकास की अवधारणा सर्वाधिक उपयोगी और ग्राह्य प्रतीत होती है। प्रख्यात अर्थशास्त्री बजरंग लाल गुप्ता इन दिनों मंगल विकास की अवधारणा के कारण काफी चर्चित हैं। इस अवधारणा के मूल में मनुष्य और उसका आह्लाद है। उनका कहना है कि धन और संपदा अनिवार्यतः प्रसन्नता नहीं देते। यदि मनुष्य समाज को प्रसन्न तथा सर्वत्र सबके सुख के लिए माध्यम बनना है तो उसे प्रकृति संरक्षण के लिए सिद्ध होकर मानवीय मूल्यों की रक्षा का दायित्व निभाना होगा। जब हम इस धर्म से च्युत होते हैं तभी स्वाइन फ्लू, एड्स जैसे संकट आते हैं।

□□□

सतसङ्ग (एक विद्यार्थी)

परमात्मा का नाम 'सत्' है और उसी के साथ नित्य सङ्ग करना- सत्सङ्ग कहलाता है; परन्तु हम जैसे अस्थिर वृत्ति के मनुष्यों के सन्मुख परमात्मा का प्रत्यक्ष होना कठिन है, अथवा यों कहना चाहिए कि जब तक हममे अनन्य प्रेम, भक्ति द्वारा परमात्मा को प्रसन्न कर प्रगट करने की शक्ति न आ जाय, तब तक हम उस ('सत्') का सङ्ग करने में असमर्थ ही है।

इस वास्तविक सत्सङ्ग (ईश्वरीय सङ्ग) की प्राप्ति करने के लिए अनेक साधन हैं, परन्तु उन सब साधनों में एक सर्वोत्तम है, जिसका नाम भी 'सत्सङ्ग' ही है। इस 'सत्सङ्ग' का अर्थ है- 'सत्पुरुषों के साथ सङ्ग करना। सत्पुरुष उन्हें कहते हैं जो परमात्मा के नित्य, शुद्ध, मुक्त, वास्तविक स्वरूप रूपी रसामृत का पान कर चुके हैं, अथवा जो 'सत्' का सङ्ग करते हैं या जो (संत) परमात्मा की प्राप्ति के हेतु अपने समस्त कुटुम्बियों का तथा सांसारिक धन-सम्पत्ति आदि समस्त मायावी वस्तुओं का परित्याग करके निरन्तर उसी 'सत्' का 'सङ्ग' करते हैं, जो इस अखिल ब्रह्माण्ड को एक ब्रह्ममय समझते हैं, जो अंजलिगत पुष्पों की भांति दुष्टों तथा सज्जनों को समानदृष्टि से देखते हैं, जिनके मुखमंडल पर दैविक तेज की झलक टपकती है, जिनकी सुमधुर, वेदपूर्ण, पूतवाणी में विद्युत् का-सा प्रभाव होता है।

ऐसे वीतराग, महात्माओं का 'सङ्ग' ही प्रथम दुर्लभ है, सौभाग्यवश यदि कहीं प्राप्ति भी हो जाय तो उनको पहचानना भी सरल नहीं। फिर भी बिना पहचाने साधु-सङ्ग निष्फल नहीं जाता। 'सत्सङ्ग' की प्राप्ति

महत्पुण्यों से होती है, अल्पकाल तक भी सत्पुरुषों का सङ्ग अत्यन्त प्रभावशाली होता है। इसे भी भगवान् ने नारद के प्रति कहा है-

हे नारद! 'अल्पकाल की हुई सत्पुरुषों की सेवा के प्रभाव से मुझमें तेरी दृढ़ भक्ति हो गई है, अतः अब इस निन्दित दासी पुत्र शरीर को छोड़कर मेरे पार्षदशरीर को प्राप्त होओगे। अल्प सत्संग भी भवसागर से पार उतरने के लिए पर्याप्त है, इसी कारण स्वर्गादिक से भी वह श्रेष्ठ है। जैसा कि कहा है-

सत्सेवयाऽदीर्घयाऽपि जाता मयि दृढा मतिः।

हिवाऽवद्यमिमं लोकं गन्ता मज्जन्तामसि॥

सत्संग के ही प्रभाव से सबको बुद्धि, कीर्ति, भक्ति आदि पदार्थ मिलते हैं। यथा:-

‘जलचर, थलचर, नभचर नाना,
जे जड़ चेतन जीव जहाना।
मति कीरति गति भूति भलाई,
जब ‘जेहि’ जतन जहां जेहि पाई॥

बिना सत्संग के ज्ञान नहीं होता, और सत्सङ्गति राम की कृपा के बिना अप्राप्य ही है। साधुओं की संगति आनन्द-मंगल की मूल है, सब साधन दान, जप, तप यज्ञ, दान आदि फूलों का सिद्ध फल है। अथवा सत्सङ्गति आनन्द रूपी वृक्ष की मूल है यथा-

‘बिनु सत्सङ्ग विवेक न होई,
राम-कृपा बिनु सुलभ न सोई।
सत्सङ्गति मुद मङ्गल मूला,
सोइ सफल सिधि साधन फूला॥’

यह सत्सङ्ग पतित अधम जीवों को भी उच्च शिखर पर पहुँचा देता है तथा शठों को भी सुधार देता है। यथा-

अहो वयं जन्मभृतोऽद्यहास्य,
वृद्धा नु वृत्त्यापि विलोमजाता।
दौष्कृत्यमाधिं विधुनोति शीघ्रं,
महत्तमानामभिधानयोगः॥'

श्री सनत्कुमार सत्सङ्ग की प्रशंसा करते हुए कहते हैं कि-

“सङ्गमः खलु साधूनामुभयेषाञ्च सम्मतः।
यत्भाषणे च सम्प्रश्नः सर्वेषां वितनोति शम्॥”

अर्थात् सत्पुरुषों का सङ्ग वक्ता तथा श्रोता को समान ही सुखदाई है, जिनका परस्पर वार्तालाप संप्रश्न सभी मनुष्यों का कल्याण करता है। ऐसा भगवद्भक्त-सङ्ग करने ही योग्य है। श्री रहूगण सत्सङ्ग-महिमा दिखलाते हैं कि-

‘न ह्यद्भुतं त्वञ्चरणाब्जरेणुभि-
र्हतांसो भक्तिरधोक्षजेऽमला।
मौहूर्त्तिकाद्यस्य समागमाञ्च मे,
दुस्तर्कमूलोऽद्य हतोऽविवेकः॥’

सर्वदा आपके श्रीचरणों की रज के धारण करने से जिनके पाप नष्ट हो गए हैं, उन्हें भगवान् की निर्मल भक्ति प्राप्त हो जाती है, इसमें कोई आश्चर्य नहीं है, क्योंकि आपके दो घड़ीभर के सत्सङ्ग से ही दुष्ट तर्कों से जिसकी जड़ मजबूत हो रही है, ऐसा अविवेक भी नष्ट हो गया।

श्रीजड़भरत कहते हैं- ‘हे रहूगण’ ! वह भगवान् तप, यज्ञ, अन्न-दान, गृहस्थधर्म, वेदाभ्यास, जल, अग्नि तथा सूर्य की उपासना से प्राप्त नहीं होता;

किन्तु महापुरुषों की चरण-रज में स्नान करने से ही मिलता है।

अतः सत्पुरुषों का सङ्ग करना चाहिए, क्योंकि परमात्मा का साक्षात्कार करा देने में एकमात्र साधन सत्सङ्ग ही है। सत्संग की शरण लेने वाले भक्तों का भार उस ‘सत्’ अर्थात् परमात्मा पर ही पड़ जाता है। यदि खोजने पर भी कोई सत्पुरुष न मिले बल्कि, मद्यपी, कनफटे, असत्पुरुष ही भाग्यवश मिले तो उपनिषद् गीता, रामायणादि सद् ग्रन्थों का पठन-पाठन ही करना चाहिए-यह भी सत्सङ्ग है। किसी धर्म स्थान, देवालय में स्मरण करना तथा कथा वार्ता श्रवण करना भी सत्सङ्ग ही है। इस प्रकार सब पुरुषों को एक होने से प्राणियों में सद्भावना बढ़ेगी और वहां धार्मिक कृत्य नित्य प्रति उत्सुकता तथा दृढ़ता के साथ होते रहेंगे, जिससे ‘धर्म की जय, अधर्म का नाश निश्चय ही है। इस प्रकार प्रत्येक जगह ‘सत्सङ्ग’ का प्रचार होना चाहिए, जिससे धर्म का प्रचार होगा। एक साथ सब मनुष्य बैठकर एक स्वर होकर निःस्वार्थ भाव से यही पुकारे कि- विश्व का कल्याण हो, क्योंकि विश्वकल्याण से ही निजकल्याण सम्भव है। बस, इस प्रकार के सत्सङ्ग द्वारा जनता में धर्मप्रचार हो सकता है, सत्सङ्ग की प्रशंसा सभी ने की है, कवि कुलचूड़ामणि श्री गोस्वामी तुलसीदासजी भी सत्सङ्ग की प्रशंसा में यही लिखते हैं कि-

‘सात स्वर्ग अपवर्ग सुख,
धरिय तुला एक अंग।
तुले न ताहि सकल मिलि,
जो सुख लव सत्संग॥

□□□

ध्यान का आधार है भजन

□ प्रस्तुति:- धर्मेन्द्र गोयल, पिलखुवा

अपने आत्मा के समान सब जगह सुख-दुःख को समान देखना तथा सब जगह आत्मा को परमेश्वर में एकीभाव से प्रत्यक्ष की भाँति देखना बहुत ऊँचा ज्ञान है।

चिन्तनमात्र का अभाव करते-करते अभाव करने वाली वृत्ति भी शान्त हो जाय, कोई भी स्फुरणा शेष न रहे तथा एक अर्थमात्र वस्तु ही शेष रह जाय, यह समाधि का लक्षण है।

भगवान् के प्रेम में ऐसी निमग्नता हो कि शरीर और संसार की सुधि ही न रहे, यह बहुत ऊँची भक्ति है।

नेति-नेति के अभ्यास से 'नेति-नेति' रूप निषेध करने वाले संस्कार का भी शान्त आत्मा में या परमात्मा में शान्त हो जाने के समान ध्यान की ऊँची स्थिति और क्या होगी?

परमेश्वर का हर समय स्मरण न करना और उसका गुणानुवाद सुनने के लिये समय न मिलना बहुत बड़े शोक का विषय है।

मनुष्य में दोष देखकर उससे घृणा या द्वेष नहीं करना चाहिये। घृणा और द्वेष करना हो तो मनुष्य के अंदर रहने वाले दोषरूपी विकारों से करना चाहिये। जैसे किसी मनुष्य को प्लेग हो जाने पर उसके घर वाले प्लेग के भय से उसके पास जाना नहीं चाहते, परंतु उसको प्लेग की बीमारी से बचाना अवश्य चाहते हैं, इसके लिये अपने को बचाते हुए यथासाध्य चेष्टा पूरी तरह से करते हैं, क्योंकि वह उनका प्यारा है। इसी प्रकार जिस मनुष्य में चोरी आदि दोषरूपी रोग हों, उसको अपना प्यारा बन्धु समझकर उसके साथ घृणा या द्वेष न कर उसके रोग से बचते हुए उसे रोगमुक्त करने की चेष्टा करनी चाहिये।

भगवान् बड़े ही सुहृद और दयालु हैं, वे बिना ही कारण हित करने वाले और अपने प्रेमी को प्राणों के समान प्रिय समझने वाले हैं। जो मनुष्य इस तत्त्व को जान जाता है, उसको भगवान् के दर्शन के बिना एक पल के लिए भी कल नहीं पड़ती। भगवान् भी अपने भक्त के लिए सब कुछ छोड़ सकते हैं, पर उस प्रेमी भक्त को एक क्षण भी त्याग नहीं सकते।

मृत्यु को हर समय याद रखना और समस्त सांसारिक पदार्थों को तथा शरीर को क्षणभंगुर समझना चाहिए। साथ ही भगवान् के नाम का जप और ध्यान का बहुत तेज अभ्यास करना चाहिए। जो ऐसा करता है वह परिणाम में परम आनन्द को प्राप्त होता है।

मनुष्य जन्म सिर्फ पेट भरने के लिए ही नहीं मिला है। कीट, पतंग, कुत्ते, सूअर और गधे भी पेट भरने की चेष्टा करते रहते हैं। यदि उन्हीं की भाँति जन्म बिताया तो मनुष्य जीवन व्यर्थ है। जिनका शरीर और संसार अर्थात् क्षणभंगुर नाशवान् जड़वर्ग में सत् का भाव नहीं है, वे ही जीवन्मुक्त हैं, उन्हीं का मनुष्य जन्म सफल है। जो समय भगवद्भजन के बिना जाता है, वह व्यर्थ जाता है। जो मनुष्य समय की कीमत समझता है, वह एक क्षण भी व्यर्थ नहीं खा सकता। भजन से अंतःकरण की शुद्धि होती है, तब शरीर और संसार में वासना और आसक्ति दूर होती है, इसके बाद संसार की सत्ता मिट जाती है। एक परमात्मा सत्ता ही रह जाती है।

संसार स्वप्नवत् है। मृगतृष्णा के जल के समान है, इस प्रकार समझकर उसमें आसक्ति के अभाव का नाम वैराग्य है। वैराग्य के बिना संसार से मन नहीं हटता और इससे मन हटे बिना उसका परमात्मा में लगाना बहुत ही कठिन है, अतएव संसार की स्थिति

पर विचारकर इसके असली स्वरूप को समझना और वैराग्य को बढ़ाना चाहिये।

भगवान हर जगह है, परंतु अपनी माया से छिपे हुए हैं। बिना भजन के न तो कोई उसको जान सकता है और न विश्वास कर सकता है। भजन से हृदय के स्वच्छ होने पर ही भगवान की पहचान होती है। भगवान प्रत्यक्ष हैं, परंतु लोग उन्हें माया के पर्दे के कारण देख नहीं पाते।

शरीर से प्रेम हटाना चाहिये। एक दिन तो इस शरीर को छोड़ना ही पड़ेगा, फिर इसमें प्रेम करके मोह में पड़ना कोई बुद्धिमानी नहीं है। समय बीत रहा है, बीता हुआ समय फिर नहीं मिलता, इससे एक

क्षण भी व्यर्थ न गंवाकर शरीर तथा शरीर के भोगों से प्रेम हटाकर परमेश्वर से प्रेम करना चाहिए।

जब निरन्तर, भजन होने लगेगा, तब आप ही निरन्तर ध्यान होगा। भजन ध्यान का आधार है। अतएव भजन को खूब बढ़ाना चाहिए। भजन के सिवा संसार में उद्धार का और कोई सरल उपाय नहीं है। भजन को बहुत ही कीमती चीज समझना चाहिए। जब तक मनुष्य भजन को बहुत दामी नहीं समझता, तब तक उससे निरन्तर भजन होना कठिन है। रूपये, भोग, शरीर और जो कुछ भी है, भगवान का भजन इन सभी से अत्यन्त उत्तम है। यह दृढ़ धारणा होने से ही निरन्तर भजन हो सकता है।

□□□

गोस्वामी तुलसीदास जी के जन्म दिवस के अवसर पर

□ बिन्दु भारद्वाज

क्या हो मेरे तुम बाबा तुलसी कैसे मैं बतलाऊँगी

प्राणों के भी प्राण तुम चरणों में शीश नवाऊँगा
ना रचते तुम 'श्रीमानस' जो श्रीराम को कैसे जानती मैं

ना कहते जो श्री राम कथा श्री राम मैं ना अनुरागती मैं
दिव्य श्री मानस रचकर तुमने प्राणों पर उपकार किया

राम प्रेम की वरषा करके जीवन को आधार दिया
क्या हो

हृदय के नीरस मरूथल में अमृत बन के तुम बरसो हो
जन्मों की प्यास बुझाकर के मन ही मन में तुम हरषे हो

प्रति उपकार मैं क्या कर पाऊँ प्रति पल तुमको निहारूँगी
श्रीराम के चरणों से भी पहले तुमको मैं शीश नवाऊँगी

चन्दन तरू है श्री राघव जो शीतल और मंद समीर हो तुम
आनन्द के घन है राम यदि तृषित प्राणों के नीर हो तुम

तुमरी कृपा से ओ मेरे बाबा राघव के गुण गाऊ मैं
पर दे दो मेरे भोले बाबा राम प्रेम पा जाऊँ मैं

युधिष्ठिर की धर्मपरायणता

भगवान श्रीकृष्ण ने युधिष्ठिर को सम्बोधित करते हुए कहा था- हे युधिष्ठिर! मैं तुम्हारे साथ इसलिए नहीं हूँ कि तुम मेरी बुआ कुंती के पुत्र हो, मेरे रिश्तेदार हो बल्कि मैं तो तुम्हारे साथ इसलिए हूँ क्योंकि तुम धर्म के साथ हो और धर्म तुम्हारे साथ है, सत्य और न्याय तुम्हारे साथ है। इस महत्वपूर्ण तथ्य से यह ज्ञात होता है कि जिसके अन्दर धर्म है उसके जीवन में भगवान हैं। धर्मराज युधिष्ठिर को केवल देवताओं ने ही धर्मराज कहा हो ऐसी बात नहीं है बल्कि उस समय के जनसमुदाय ने भी उनको धर्मराज की डिग्री दी थी। हमारे देश में ऋषि, मुनि और आचार्य को किसी विश्वविद्यालय के द्वारा डिग्री नहीं दी जाती थी ये मुनि हैं, ये ऋषि हैं, राजऋषि अथवा ब्रह्मऋषि हैं, बल्कि तपस्या से वे लोग इस स्थान पर पहुँचते थे। युधिष्ठिर को समाज ने धर्मराज कहकर पुकारा, कारण 'महाभारत' के युद्ध के समय में रात्रि में वेश बदलकर अपने और पराए घायल पड़े हुए व्यक्तियों की दशा को देखकर आँखों में आंसू भरने वाला व्यक्ति कोई और नहीं था, युधिष्ठिर ही था और सबके घाव पर मरहम-पट्टी लगाने का कार्य करने वाला भी युधिष्ठिर ही था।

जब युधिष्ठिर महाभारत का युद्ध जीत गये और उनको सिंहासन के ऊपर बैठाया गया, उनके सिर के उपर मुकुट सजाया गया। सिंहासन पर आरूढ़ होकर, जनसमुदाय उनके दर्शन करने के लिए आया। तो जो घायल सैनिक थे वे भी ठीक हो करके दर्शन करने के लिए आये और जो सैनिक विदेशी थे, मतलब दुश्मन सैनिक थे उपचार के बाद ठीक हुये तो उनको

भी मौका दिया गया कि तुम भी दर्शन कर सकते हो। जब दर्शन करने के लिए खड़े हुए तो सब घायल सैनिक ने एक आवाज में कहा कि रात्रि में आकर के हमारे जख्मों पर दवा लगाने का काम कोई और व्यक्ति नहीं करता था यही व्यक्ति करता था जो आज राजगद्दी पर बैठा हुआ है। ये हमारा हृदय का भी राजा है, हमारी प्रजा का और हमारे देश का भी राजा है। इसलिए इनका नाम केवल युधिष्ठिर नहीं होना चाहिए, धर्मराज युधिष्ठिर होना चाहिए।

जिसके जीवन में धर्म है उसके जीवन में भगवान है। इसलिए तो जब युधिष्ठिर युद्ध के लिए दोनों सेनाओं के सजने के बाद अपने रथ में आकर के बैठे तो उन्होंने सबसे पहले काम यही किया- अपने गुरुजनों को प्रणाम करने के लिए पहुँचे। सबसे पहले भीष्म पितामह के पास गये युधिष्ठिर ने पाव छुए, और कहा- दादा जी युद्ध शुरू होने वाला है, लड़ाई होगी, खून बहेगा और न जाने किस किसको वीरगति प्राप्त होगी। मैं आपके चरणों में केवल इसलिए आया हूँ, अब तक हमने आपके चरणों में बैठकर केवल आशीर्वाद ही पाया था, आज हम लोगों से कुछ गलतियाँ हो रही हैं। क्योंकि लड़ाई में गलतियाँ हो सकती हैं, हम पहले ही आपसे माफी मांगने के लिए आये हैं।

अपने हक के लिए लड़ना पड़ रहा है। धर्म के लिए लड़ना पड़ रहा है। दादाजी हमें माफ करना हम आपको प्रणाम करने के लिए आए हैं। भीष्म के मुंह से निकला हे युधिष्ठिर! तुम धर्म के पक्ष में हो, इसलिए मैं तुम्हें आशीर्वाद देता हूँ कि जहाँ धर्म होता है वहाँ

विजय जरूर होती है, तुम सफल हो जाओगे। भीष्म के मुंह से आशीर्वाद निकला, युधिष्ठिर द्रोणाचार्य की तरफ बढ़ गए।

लेकिन दुर्योधन को गुस्सा आया दौड़कर के आगे आया, बोला दादाजी! आप लड़ाई तो हमारे पक्ष में लड़ रहे हो। आशीर्वाद जीतने का उनको देते हो। भीष्म ने कहा-दुर्योधन! तूने एक ही कार्य में दक्षता प्राप्त की है, जिद्ध करना। अगर तेरा ही कोई पांव आकर के छुएगा तेरा हाथ उसके सिर पर जरूर पहुंच जाएगा। इसमें सोचने की जरूरत नहीं पड़ती। यहां तो दिल का ही सौदा है, अन्दर से भावना उठती है और हाथ सिर पर पहुंच जाता है। हाथ जब सिर पर पहुंच जाता है तो उसके कल्याण की कामना ही करनी होती है। मैं भी क्या करूं साच तो नहीं पा रहा हूँ। हृदय में बैठा हुआ भगवान जो कुछ बुलवा रहा है, वही मैं बोल रहा हूँ। क्योंकि जब कोई झुकने के लिए आता है तो आशीर्वाद अपने आप निकलता रहता है। इस युधिष्ठिर को न जाने कैसा संस्कार विरासत में मिला है, ये पत्थर को भी मोम बनाना जानता है।

युधिष्ठिर द्रोणाचार्य की तरफ गए, द्रोणाचार्य के चरणों को छुआ और कहा- हे गुरुदेव! इस मोड़ पर आकर खड़े होना था, किस्मत कहां लेकर आई, अपने और परायों के बीच लड़ाई होती है, लेकिन यहां तो पराया कोई है ही नहीं, सारे ही तो अपने हैं, आपके चरणों में ये माथा सदा झुका है, लेकिन कभी अपशब्द नहीं बोले गए, कड़वा नहीं बोला गया, आज हमसे गलतियां हो सकती हैं। आपको पश्चाताप न हो कि हमने कैसे शिष्यों को ज्ञान दिया है। इसलिए हमें माफ करना। आपके सामने लड़ने के लिए खड़े

हो जाएं तो बात अच्छी नहीं, लेकिन कर्तव्य के लिए, धर्म के लिए, लड़ना पड़ रहा है।

द्रोणाचार्य की आंखों में आंसू बहने लगे उन्होंने कहा कि युधिष्ठिर मेरे जीवन में अगर कोई गर्व करने की बात है तो यह बात है कि मैं तेरे जैसे शिष्य का गुरु हूँ। जो तू सिर झुका रहा है, तो मेरा हृदय कह रहा है कि मेरे पास जो कुछ है, वह सब मैं तुझे दे दूंगा। भगवान करे कि तेरी ही विजय हो। बहुत प्यार से आचार्य द्रोण ने आशीर्वाद दिया।

लेकिन उससे भी आनन्दकारी बात क्या हुई, युधिष्ठिर आगे-आगे आशीर्वाद लेने के लिए पहुंचे, उनके पीछे-पीछे दूसरे भाई, चारों पांडव, कृपाचार्य के पास भी गए मामे, दादे आदि सबको प्रणाम किया। लेकिन युधिष्ठिर लड़ाई के लिए उतावले नहीं हैं। भीम बड़े भाई के पीछे-पीछे चल रहे हैं जैसे बड़े भाई कर रहे हैं, भीम भी करता जा रहा है। हालांकि भीम को यह लग रहा है कि समय ज्यादा खराब हो रहा है। अगर मौका मिल जाय तो जरा गदा के जौहर दिखाने का अवसर है। थोड़ी देर में युद्ध खत्म हो जायेगा बाद में प्रणाम होता रहेगा। फिर भी बड़े भाई चल रहे हैं तो हम भी अनुसरण कर रहे हैं। क्योंकि बड़ा भाई धर्म को साथ लेकर चल रहा है बड़ा घर का कोई भी हो अगर धर्म की मर्यादा घर में निभा रहा होगा, तो छोटे भाईयों पर असर जरूर होगा। कुछ-न-कुछ तो समझेंगे बुरा करने से और कड़वा बोलने से। क्योंकि एक मर्यादा को जिंदा रखा जा रहा है। तो दूसरों को भी ध्यान आएगा, हमें मर्यादा जिंदी रखनी चाहिए। इसके बाद युधिष्ठिर ने हाथ जोड़कर, दोनों ही पक्षों की तरफ आवाज देकर कहा कि भाईयों युद्ध तो निश्चित है। बहुत रोका लेकिन युद्ध होना ही

है, हो रहा है, पर मेरा एक निवेदन है मेरे पक्ष में जो सैनिक लड़ने के लिए खड़े हुए हैं, मैं उनसे निवेदन करना चाहता हूँ कि अगर उन्हें लगता है कि मेरा पक्ष गलत है और मैं गलत जगह खड़ा हूँ, जिस भाई को ऐसा लगता है वह मेरा साथ छोड़कर दुर्योधन भाई के पक्ष में जाकर खड़ा हो सकता है।

अगर दुर्योधन भाई के पक्ष में किसी को ऐसा लग रहा है कि वह वहाँ गलत खड़ा हुआ है, उसको युधिष्ठिर के पास आना चाहिए तो मैं उसको गले लगाने के लिए तैयार हूँ। इतना कहना था, दुर्योधन का छोटा भाई था, उसका नाम था विकर्ण उसने जब सैनिकों की तरफ देखा और देखने के बाद कहा कि इनकी आत्मा तो इनको अन्दर अन्दर से कचोट रही है, लेकिन हिम्मत वाले नहीं हैं।

मैं हूँ हिम्मत वाला, मैं चलकर आऊँगा युधिष्ठिर तेरे पक्ष में। क्योंकि तेरे पक्ष में धर्म है, इसलिए तेरे साथ आकर के खड़ा होता हूँ। दुर्योधन का सगा भाई चलकर जब युधिष्ठिर के पास खड़ा हो गया। तो जो सैनिक उधर खड़े हुए थे। वे एक बार उसकी तरफ देखे दूसरी बार जमीन की तरफ देखें और कहें कि कम से कम हममें से एक तो था जो सच बात को कह गया। सत्य की राह पर चला गया।

भगवान श्रीकृष्ण ने विकर्ण की तरफ देखा और देखने के बाद कहा- विकर्ण अधर्म ने काल को बुला लिया और अब काल इन सबके सिर पर सवार है। जो दुर्योधन के पक्ष में खड़े हुए हैं लेकिन तूने बहुत अच्छा किया। धर्म के पक्ष में आकर खड़ा हो गया और जो धर्म के पक्ष में आ जाता है, काल उसके चरणों के पास खड़ा रहता है। उसके सिर पर

मंडराया नहीं करता इसलिए तू सुरक्षित है। तेरा कुछ बिगड़ने वाला नहीं है। आप सोचिए जो धर्म का पालन करता है, बड़ी से बड़ी विघ्न बाधाओं के बीच में वह सुरक्षित रहता है। संसार में धर्म ही जीवित रहता है, धर्म ही शान्ति देने वाला है, एक धार्मिक व्यक्ति है, तो दूसरा व्यक्ति कितना ही कठोर हो, उसके कठोर हृदय को भी मोम की तरह कोमल कर देता है।

यू तो परीक्षाओं का दौर सबके जीवन में आता है। लेकिन धर्म की राह पर चलने वाले की परीक्षा कुछ ज्यादा ही होती है। धर्मराज युधिष्ठिर की तीन परीक्षाएं हुईं। तीनों परीक्षाओं में उन्होंने धर्म को नहीं छोड़ा। एक परीक्षा तो यह थी जब यक्ष ने युधिष्ठिर से प्रश्न करके उसकी परीक्षा ली। एक परीक्षा वह भी जब स्वर्ग जाने के लिए युधिष्ठिर हिमालय की यात्रा कर रहे थे, उनके साथ-साथ एक कुत्ता चल रहा था। युधिष्ठिर को जब लगा कि अब यह शरीर सम्भाला नहीं जा रहा है, तब उनके सामने एक विमान आकर रूका, उस विमान पर बैठे देवताओं ने आदर पूर्वक युधिष्ठिर से कहा कि आप आइये! आपके लिए स्वर्ग से विमान आया है।

युधिष्ठिर कहने लगे कि मैं अकेला इस विमान पर नहीं बैठूँगा, मेरे साथ यहाँ तक जो जीव चलकर आया है, ये कुत्ता एक रोटी, एक टुकड़े का लालच लेकर और मेरे पीछे-पीछे चलता हुआ आया है। इसको मैंने कभी थोड़ी बहुत रोटी देकर प्यार दिया होगा, अब सब तो एक साथ छोड़ गये लेकिन यह मेरा साथ नहीं छोड़ रहा है। अब मुझे सुख मिलने लगा है तो मैं इसका साथ नहीं छोड़ूँगा। मैं कुत्ते को

विमान में बैठाकर स्वर्ग जाना चाहूंगा।

देवताओं ने कहा- फिर तो आप स्वर्ग नहीं जा सकोगे। युधिष्ठिर कहने लगे नरक मिल जाय मैं नरक में ही रह लूंगा लेकिन जहां भी जाऊंगा अपने इस कुत्ते को साथ लेकर जाऊंगा। आखिर में कुत्ते को साथ बैठाया गया जैसे ही वह स्वर्ग पहुंचे, तो कुत्ता धर्म की शक्ल धारण करके खड़ा हो गया। और उसने कहा मैं धर्मराज बनकर आपकी परीक्षा लेने आया था।

धर्मराज युधिष्ठिर जैसे ही स्वर्ग में जाकर खड़े हुए और उनको किसी के चीखने चिल्लाने की आवाज सुनाई दी। ध्यान से सुना तो पता लगा कि उनके अपने ही भाई बन्धु रो रहे हैं। जिसकी तेज रोने की आवाज थी वह दुर्योधन था। युधिष्ठिर पूछने लगे कि यह मेरे भाइयों के रोने की आवाज आ रही है, ये लोग कहां है? बताया गया सब नरक में हैं। नरक में क्यों हैं? इसका ही कारण पूछा गया तो बताया कि कोई क्रोध करता था, कोई मोह करता था, कोई अभिमान करता था, तो कोई बड़ा जिद्दी था। युधिष्ठिर कहने लगे कि थोड़ी देर के लिए मैं भी उनके साथ बैठने की इच्छा रखता हूं स्वर्ग के अधिकारी ने कहा युधिष्ठिर अगर आप नरक में गये तो आप पुनः स्वर्ग नहीं आ पाओगे। युधिष्ठिर ने सुना अनसुना कर दिया। नरक की तरफ दौड़े और जहां उनके भाई थे, दरवाजे पर जाकर खड़े हो गए, द्वार बंद थे। लेकिन युधिष्ठिर के पुण्यों की शीतलता, सुगन्ध अंदर जाने लगी। तो अंदर बैठे दुर्योधन ने जोर से चिल्लाकर कहा-कोई पुण्यात्मा दरवाजे पर खड़ी है। उसकी शीतल छाया

उसके शरीर को स्पर्श करती हुई वायु मेरे तन को शीतलता पहुंचा रही है। कृपा करके वह अंदर आ जाए। युधिष्ठिर ने दरवाजा खुलवाया और जाकर अंदर खड़े हो गये। जैसे ही अंदर जाकर खड़े हुए नरक में बैठे लोगों को शक्ति मिलने लगी। स्वर्ग के अधिकारी ने कहा कि आपने जो पुण्य किये हैं उनके कारण आपको स्वर्ग मिलेगा नरक नहीं। इसलिए आप नरक छोड़ो, स्वर्ग में चलो।

युधिष्ठिर ने मना कर दिया और गर्दन हिलाकर स्वर्ग को नकार दिया कि मैं वहां नहीं जाऊंगा। फिर जोर देकर कहा गया कि आप स्वर्ग में चलो। युधिष्ठिर ने एक शब्द में कहा जो बड़ा प्यारा था। उन्होंने कहा- अगर मेरे अंदर मेरे पुण्यों में और मेरे कार्यों में शक्ति है तो मैं इस नरक को भी स्वर्ग बना लूंगा। इसके विपरीत अगर मेरे अंदर शक्ति नहीं है, तो मेरे स्वर्ग को नरक होने में भी देर नहीं लगेगी। मैं जहाँ खड़ा हूँ वहीं ठीक हूँ।

युधिष्ठिर को बताया गया कि तुम्हारे भीम आदि भाई भी स्वर्ग में ही बैठे हुए हैं। पर यह आपकी परीक्षा थी कि आप ऐसे स्थान पर जाकर दया करते हो या नहीं करते हो। लेकिन हे युधिष्ठिर जी महाराज! एक बात आपको यह भी बताई जाए जो थोड़ी देर के लिए नरक में जाकर खड़े हुए इसका भी एक कारण था। आपने जीवन में एक बार आधा सच बोला था और आधा झूठ बोला था। अतः थोड़ी देर के लिए आपको भी नरक में आकर खड़ा होना पड़ा। धर्मराज युधिष्ठिर का धार्मिक जीवन अनुकरणीय, वन्दनीय और पूज्यनीय है।

“स्वतंत्रवार्ता” से साभार

**पूज्यपाद जगद्गुरु रामानन्दाचार्य स्वामी रामभद्राचार्य जी महाराज की
षष्टिपूर्ति पर प्रकाशित होने वाले ग्रन्थ
“षष्टिपूर्ति” का सम्पादन प्रारम्भ**

धार्मिक जगत को सहर्ष सूचित किया जाता है कि श्रीराघवपरिवार के परमाराध्य श्री चित्रकूट तुलसीपीठाधीश्वर जगद्गुरु रामानन्दाचार्य स्वामी रामभद्राचार्य जी महाराज का आगामी १४ जनवरी २०१० (मकर संक्रान्ति) को श्री चित्रकूट में ६० वाँ जन्मजयन्ती महोत्सव मनाया जाएगा। इस शुभ अवसर पर पूज्यपाद जगद्गुरु जी के विलक्षण व्यक्तित्व एवं कुशलकृतित्व पर ‘षष्टिपूर्ति’ नामक एक अभिनन्दन ग्रन्थ भी प्रकाशित किया जाएगा।

सभी से विनम्र अनुरोध है कि पूज्यपाद आचार्य श्री के लोकोत्तर चरित के कतिपय संस्मरण जो आपके साथ घटित हुए हों, उनके अलौकिक ज्ञान भक्ति और वैराग्य के प्रेरणास्पद प्रसंग अथवा उनकी विशिष्ट प्रतिभा तथा स्मृति के आख्यान लेख अथवा कविता के रूप में संस्कृत अथवा हिन्दी भाषा में लिपिबद्ध करके निम्नलिखित पतों पर शीघ्रातिशीघ्र भेजने की कृपा करें। आपके लेख/कविता/श्लोक/अभिनन्दन पत्र आदि हमें ३१ अक्टूबर २००९ तक अवश्य प्राप्त हो जाएँ। निवेदन है कि लेख सुवाच्य अथवा टंकित किए हुए हों।

लेख भेजने के पते-

- | | |
|--|---|
| १. डा० कुमारी गीता देवी मिश्रा (पूज्या बुआजी)
श्री तुलसी पीठ आमोदवन पोस्ट-नयागाँव
चित्रकूटधाम, (सतना) म० प्र०
पिन-४८५३३१, फोन- ०७६७०-२६५४७८ | २. डा० सुरेन्द्र शर्मा ‘सुशील’
शाश्वतम्, डी-२५५ गोविन्दपुरम्
गाजियाबाद (उ०प्र०) फोन-०९८६८९३२७५५ |
|--|---|

‘षष्टिपूर्ति’ अभिनन्दन ग्रन्थ समिति

संरक्षक-डा० कुमारी गीता देवी मिश्रा (पूज्या बुआ जी) चित्रकूट डा० शोभनाथ दुबे, कुलपति जे० आर० एच० यू० चित्रकूट अध्यक्ष- प्रेममूर्ति श्रीप्रेमभूषण जी महाराज, कानपुर उपाध्यक्ष- १. आचार्य दिवाकर शर्मा गाजियाबाद २. श्री सुशील कुमार अग्रवाल सहारनपुर महामन्त्री- सह/उपमन्त्री- कोषाध्यक्ष- श्री सर्वेश जी गर्ग गाजियाबाद संयोजक- डा० सुरेन्द्र शर्मा ‘सुशील’ गाजियाबाद	सहसंयोजक- डा० श्रीमती वन्दना श्रीवास्तव परामर्शमण्डल- डा० देवर्षि कलानाथ शास्त्री डा० वाचस्पति उपाध्याय डा० राजेन्द्र मिश्र अभिराज डा० श्री धर वसिष्ठ डा० ब्रजेश दीक्षित डा० रामाधार शर्मा डा० नित्यानन्द मिश्र (हांगकांग) निवेदक षष्टिपूर्ति अभिनन्दन ग्रन्थ समिति गाजियाबाद
---	---

व्रतोत्सवतिथिनिर्णयपत्रक

भाद्रपद शुक्ल पक्ष/सूर्य दक्षिणायन, शरद् ऋतु

तिथि	वार	नक्षत्र	दिनांक	व्रत पर्व आदि विवरण
द्वादशी	मंगलवार	उ०षा०	1 सितम्बर	श्रीवामन जयन्ती गौम प्रदेश व्रत
त्रयोदशी	बुधवार	श्रावण	2 सितम्बर	—
चतुर्दशी	गुरुवार	धनिष्ठा	3 सितम्बर	पंचक प्रारम्भ 9/35 दिन से अनन्त चतुर्दशी
पूर्णिमा	शुक्रवार	शतभिषा	4 सितम्बर	सत्यव्रत-पूर्णिमा

अश्विनी कृष्ण पक्ष/सूर्य दक्षिणायन, शरद् ऋतु

तिथि	वार	नक्षत्र	दिनांक	व्रत पर्व आदि विवरण
प्रतिपदा	शनिवार	पू० भा०	5 सितम्बर	पितृपक्ष प्रारम्भ प्रतिपदा का श्राद्ध
द्वितीया	रविवार	उ०भा०	6 सितम्बर	द्वितीया का श्राद्ध
तृतीया	सोमवार	रेवती	7 सितम्बर	तृतीया का श्राद्ध-पंचक समाप्त प्रातः 4/47 पर
चतुर्थी	मंगलवार	अश्विनी	8 सितम्बर	चतुर्थी का श्राद्ध-गणेश चतुर्थी
पंचमी	बुधवार	भरणी	9 सितम्बर	पंचमी का श्राद्ध
षष्ठी	गुरुवार	कृतिका	10 सितम्बर	षष्ठी का श्राद्ध
सप्तमी	शुक्रवार	रोहिणी	11 सितम्बर	सप्तमी का श्राद्ध
अष्टमी	शनिवार	मृगशिरा	12 सितम्बर	श्रीदुर्गाष्टमी-अष्टमी का श्राद्ध
नवमी	रविवार	आर्द्रा	13 सितम्बर	नवमी का श्राद्ध
दशमी	सोमवार	मृगशिरा	14 सितम्बर	दशमी और एकादशी का श्राद्ध
एकादशी	मंगलवार	पुष्य	15 सितम्बर	इन्दिरा एकादशी व्रत (सबका), द्वादशी का श्राद्ध
द्वादशी	बुधवार	श्लेषा	16 सितम्बर	कन्या में सूर्य-संक्रान्ति-प्रदोष व्रत-त्रयोदशी का श्राद्ध
त्रयोदशी	बुधवार	श्लेषा	16 सितम्बर	त्रयोदशी तिथि का क्षय
चतुर्दशी	गुरुवार	मघा	17 सितम्बर	चतुर्दशी का श्राद्ध
अमावस्या	शुक्रवार	पू०फा०	18 सितम्बर	पितृ विसर्जिनी अमावस्या

अश्विनी शुक्ल पक्ष/सूर्य दक्षिणायन, शरद् ऋतु

तिथि	वार	नक्षत्र	दिनांक	व्रत पर्व आदि विवरण
प्रतिपदा	शनिवार	उ०फा०	19 सितम्बर	शारदीय नवरात्र प्रारम्भ घटस्थापन
द्वितीया	रविवार	हस्त	20 सितम्बर	चन्द्रदर्शनम्
तृतीया	सोमवार	चित्रा	21 सितम्बर	—
चतुर्थी	मंगलवार	स्वाति	22 सितम्बर	श्रीगणेश चतुर्थी व्रत
पंचमी	बुधवार	विशाखा	23 सितम्बर	—
षष्ठी	गुरुवार	अनुराधा	24 सितम्बर	—
सप्तमी	शुक्रवार	ज्येष्ठा	25 सितम्बर	सरस्वती आह्वान
अष्टमी	शनिवार	मूल	26 सितम्बर	श्रीदुर्गाष्टमी, श्रीसरस्वती पूजन
नवमी	रविवार	पू०षा०	27 सितम्बर	नवरात्र समाप्त-महानवमी
दशमी	सोमवार	उ०षा०	28 सितम्बर	विजयदशमी (दशहरा)
एकादशी	मंगलवार	श्रवण	29 सितम्बर	पापांकुशाएकादशी व्रत (स्मार्त), भैया भरत मिलाप
एकादशी	बुधवार	धनिष्ठा	30 सितम्बर	एकादशी तिथि वृद्धि - पापांकुशाएकादशी व्रत (वैष्णव) पंचक प्रारम्भ 5/3 सायं से